www.thearyasamaj.org

ओ३म्

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् अपघ्नतो अरावणः॥

आर्य संकल्प

(बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा का मासिक मुख-पत्र)

वर्ष-39 अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर 2016 अंक-5

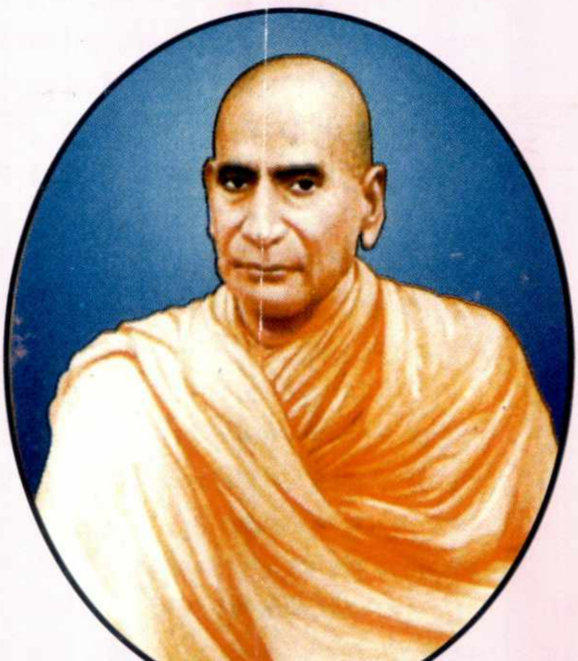

स्वामी श्रद्धानन्द

शत-शत नमन

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
कार्यालय : श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 (बिहार)

www.thearyasamaj.org

आर्य संकल्प

संरक्षक
भाई वीरेन्द्र, सभा प्रधान

प्रधान सम्पादक
रमेन्द्र कुमार गुप्ता
मोबाईल-9334184136

सम्पादक
संजय सत्यार्थी
मोबाईल-9006166168

सह सम्पादक
अरविन्द शास्त्री
मनोज शास्त्री
प्रेम कुमार आर्य

सम्पादक मंडल
ज्ञानेश्वर शर्मा
सत्य प्रिय शास्त्री

कोषाध्यक्ष
जयदेव कुमार आर्य

स्वत्वाधिकारी एवं प्रकाशक
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन
नयाटोला, पटना-800 004
E-mail : mantribraps@gmail.com

सदस्यता शुल्क
एक प्रति : 15/-
वार्षिक : 120/-

सम्पादकीय...

कथनी-करनी साथ निभाना सीखें श्रद्धानन्द से

आर्य समाज की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व समर्पण करने वालों में अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द का नाम अग्रिम पंक्ति में लिखा हुआ है। महर्षि दयानन्द से प्रेरणा पाकर मुन्सीराम से श्रद्धानन्द बन, आर्य समाज का सुरक्षा कवच बना और अपनी चट्टानी हौसले से वैदिक धर्म का झण्डा बुलन्द किया। जब सत्यार्थ प्रकाश उनके हाथ लगे तो समझो जीवन की सभी शंकाओं का समाधान हो गया हो।

आर्य समाजी बनने का जो मापदण्ड ऋषि ने बनाया, जब तक उस पर खरा नहीं उतरे, तब तक उन्होंने आर्य समाज की सदस्यता ग्रहण नहीं की। जब अपने आप में पूर्ण आश्वस्त हो गये कि अब मैं आर्य समाज का सदस्य बन सकता हूँ, तभी उन्होंने लाला साईंदास से कहा कि अब मैं आर्य समाज का सदस्य बनने योग्य हो गया हूँ, लाला जी ने हामी भर दी। सत्संग में बोलने का मौका मिला साईदास ने मुन्सीराम के पहले व्याख्यान को सुना और घर जाकर दो-तीन साथियों से कहा कि- ''आर्य समाज में यह नई स्पिरिट आई है। देखें आर्य समाज को तारती है या डुबो देती है।''

उस सत्संग में जो व्याख्यान मुन्सीराम ने दिये वह इस प्रकार है- ''हमारी कथनी और करनी एक होनी चाहिये। जो अपने जीवन को वैदिक सिद्धांत के अनुसार नहीं ढाल सकता उसे उपदेशक नहीं बनना चाहिए। यह काम भाड़े के टट्टूओं से नहीं होगा। इस पवित्र कार्य के लिये स्वार्थ को त्यागने वाले सतपुरूषों की आवश्यकता है।

मुन्सीराम जी का यह प्रथम व्याख्यान आज भी प्रासंगिक है। आज भी आर्य समाजियों की कथनी-करनी में समानता आ जाय और साथ ही वैदिक सिद्धान्तों को अपना ले तो समाज में नई क्रांति आ जाये। जिस सार्वदेशिक सभा के यशस्वी प्रधान स्वामी श्रद्धानन्द थे उस सभा का अस्तित्व भी आज खतरे में है। प्रांतिय सभायें और आर्य समाज आज तार-तार होता दिखाई दे रहा है। प्रचार तंत्र में विसंगति आ गई है। इसका मुख्य कारण है कि यह विचार केवल कागजों में सिमटकर रह गया। जीवन के धरातल पर उतर नहीं पाया। महापुरूषों के विचारों को छोड़ अपना स्वार्थी और लालची चश्में से समाजों को देखना प्रारम्भ कर दिया परिणाम सबके सामने है।

जिस समाज को स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने बलिदान से सींचा, आज आवश्यकता है उसे ऋषि विचारों से सींचे। वैदिक सिद्धांतों को अपनाकर कथनी-करनी साथ निभाना सीखें और बगैर किसी भेद-भाव के एकता का परचम लहरा दें। यही स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति सच्ची श्रद्धांजली होगी।

-पं. संजय सत्यार्थी

www.thearyasamaj.org

आर्य संकल्प

-: सूची :-

क्रम विवरण पृष्ठ संख्या

1. वेद मंत्र 2
2. स्वामी श्रद्धानन्द 4
3. आचार्य पं. उमाकान्त 5
4. आश्रम व्यवस्था 7
5. आर्य-विद्वानों के शास्त्रार्थ 9
6. राजाओं के राजा 15
7. ऋषि दयानन्द 18
8. राष्ट्रगान 26
9. प्राकृतिक चिकित्सा 29
10. सामाचार 37

इस पत्रिका में दिये गये लेख लेखकों के अपने विचार हैं, इससे सम्पादक का कोई सम्बन्ध नहीं है ।

अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर

2016

उन्नति करना प्रत्येक का अधिकार

अनुहूतः पुनरेहि विद्वानुदयनं पथः।
आरोहणमाक्रमणं जीवतो जीवतोऽयनम्॥

(यजु. 5 । 30 । 7)

शब्दार्थ- हे मानव! **(पथः)** मार्ग के (उत् अयनम्) चढ़ाव को (विद्वान्) जानता हुआ और (अनुहूतः) प्रोत्साहित किया हुआ तू (पुनः) फिर (एहि) इस पथ पर आरोहण कर क्योंकि (आरोहणम्) उन्नति करना (आक्रमणम्) आगे बढ़ना (जीवतः जीवतः) प्रत्येक जीव का, प्रत्येक मनुष्य का (अयनम्) मार्ग है, उद्देश्य है, लक्ष्य है।

शब्दार्थ- मन्त्र में हारे-थके और निरुत्साही व्यक्ति के लिए एक दिव्य सन्देश है-

1. हे मानव! यदि तू प्रयत्न करके थक गया है तो क्या हुआ! तू हतोत्साह मत हो। उत्साह के घट पीछे मत होने दे। आशा को अपने जीवन का सम्बल बनाकर फिर इस मार्ग पर आरोहण कर।

2. मार्ग की चढ़ाई को देखकर घबरा मत। सदा स्मरण रख कि तेरे लिए चढ़ाई का मार्ग ही नियत है। आशा और उत्साह से इस मार्ग पर आगे-ही-आगे बढ़ता जा। आगे बढ़ना, उन्नति करना ही जीवन-मार्ग है। पीछे हटना, अवनति करना मृत्यु-मार्ग है। पथ कठिन है तो क्या हुआ! परीक्षा तो कठिनाई में ही होती है।

3. निराश और हताश होने की आवश्यकता नहीं। आगे बढ़, उन्नति कर, क्योंकि आगे बढ़ना और उन्नति करना प्रत्येक जीव का अधिकार है।

प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति होगी। हाँ, उसके लिए बल लगाने की, पुरुषार्थ करने की तथा निराशा और दुर्बलता को मार भगाने की आवश्यकता है।

■

www.thearyasamaj.org

वेद मंत्र

-आचार्य ज्ञानेश्वरार्य रोजड़

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

(यजुर्वेद 31/18)

पदार्थ–वेद = जानता हूँ **अहम्** = मैं **एतम्** = इस **पुरुषम्**=ब्रह्माण्ड में व्यापक परमेश्वर को **महान्तम्** = जो सबसे बड़ा है **आदित्य वर्णम्** = और महान् ज्ञानी है **तमसः** = जो अज्ञान से **परस्तात्** = रहित है **तम्** = उसी ईश्वर को **एव** = ही **विदित्वा** = जानकर मनुष्य **अतिमृत्युम् एति** = मृत्यु से छूटता है **न** = नहीं **अन्य** = दूसरा कोई **पन्था** = मार्ग **विद्यते** = है **अयनाय** = जन्म-मरण के चक्र से बचने के लिए।

व्याख्या–दु:खों की सूची में सर्वप्रथम नाम मृत्यु का है। क्योंकि जितना अधिक दु:ख मृत्यु होने का पता चलने पर मनुष्य को होता है उतना दु:ख अन्य प्रतिकूलताओं में नहीं होता। मृत्यु के आ जाने पर तो सब कुछ ही छूट जाता है, उसका सारा संसार ही नष्ट हो जाता है, जो उसने घोर परिश्रम करके बनाया था। कोई भी मृत्यु को नहीं चाहता है। मृत्यु से बचने के लिए संसार के हजारों वैज्ञानिक एवं डाक्टर बड़ी-बड़ी गवेषणा कर रहे हैं किन्तु वास्तविकता यह है कि जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। शारीरिक मृत्यु से तो भगवान् भी नहीं बचा सकता है, तो फिर अन्त में मृत्यु से बचने का उपाय भगवान् को प्राप्त करना बताया है, क्या यह झूठा है?नहीं यह झूठा नहीं है। कहने का भाव यह है कि भविष्य में जन्म और जन्म के पश्चात् जो मृत्यु होती है उस जन्म-मृत्यु के चक्कर से भगवान् बचा लेता है । इस जन्म में जो शरीर मिला है वह तो मरेगा ही उसका कोई उपाय नहीं है।

मन्त्र में बताया गया है कि वह ईश्वर पुरुष है अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक है अर्थात् सारा संसार उसमें डूबा हुआ है, वह इस संसार के बाहर भी है और अन्दर भी। जैसे पानी से भरी बाल्टी में रूई डाल दी जाए तो रूई के अन्दर भी पानी होता है और रूई के बाहर भी, वैसे ही ईश्वर इस सारे संसार में व्यापक है। दूसरी बात ईश्वर के विषय में बताई कि वह आदित्यवर्ण है, जैसे सूर्य स्वयं प्रकाशित है। उसने किसी अन्य प्रकाश का आधार नहीं लिया है। रात्रि के बाद जब सूर्योदय होता है तो धरती पर विद्यमान समस्त वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान अनायास ही हो जाता है वैसे ही समाधि अवस्था में योगी को जब परमात्मा का ज्ञान रूपी प्रकाश अन्त:करण में होता है, आत्मा में होता है तो अन्त:करण के समस्त ज्ञान-अज्ञान के संस्कारों का बोध जीवात्मा को हो जाता है।

ईश्वर में अज्ञान अर्थात् राग-द्वेष तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, स्वार्थ, आलस्य, प्रमाद आदि दोष नहीं है। जब परमात्मा का प्रकाश जीवात्मा को प्राप्त होता है तो वह भी सरलता से, शीघ्रता से अपने अन्तःकरण में विद्यमान अविद्या जनित कुसंस्कारों को जानने में समर्थ हो जाता है, उनको पकड़ने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है, उनको निर्बल करने में सक्षम हो जाता है और आगे चलकर ईश्वर से प्राप्त विशेष विज्ञान, बल तथा सहयोग से उन सभी को दग्धबीज भाव तक पहुँचाने = नष्ट करने में भी सफल हो जाता है। जब जीवात्मा में अविद्या के संस्कार नष्ट हो जाते हैं तो वह आगे जन्म नहीं लेता है और आगे जन्म ही नहीं लेता तो मृत्यु कहाँ से होगी। इसलिए वेदमन्त्र में कहा गया है कि उस ईश्वर को जान लेने, उसका दर्शन-साक्षात्कार-अनुभव कर लेने से जो जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म का क्रम चल रहा है उससे वह बच जाता है।

हम चिन्तन करें तो स्पष्ट पता चल जाता है कि प्रकृति के साथ जुड़ने अर्थात् जन्म लेने पर = शरीर धारण करने पर ही दुःखों की प्राप्ति होती है। यदि शरीर न हो तो दुःख भी नहीं होते हैं। सारे पाप कर्म झूठ, छल, कपट, धोखा, चोरी, हिंसा आदि शरीर के लिए किये जाते हैं, जब शरीर ही नहीं रहेगा तो दुःख भी नहीं होगा। न होगा बांस तो न बजेगी बांसुरी ।

सामान्य बुद्धि वाले व्यक्तियों की आज यह धारणा बनी हुई है कि अधिकाधिक धनार्जन करके और उससे भोग, ऐश्वर्य-विलास के उत्तम साधनों का संग्रह करके हम समस्त दुःखों से बच जायेंगे, कोई भी दुःख हमें प्राप्त नहीं होगा' यह धारणा उनकी मिथ्या है। ईश्वर को जानकर, उस पर पूर्ण विश्वास करके ही उसकी आज्ञाओं का पालन करके ही मनुष्य जीवन पथ पर चलते हुए पदे-पदे आने वाले दुःखों व क्लेशों से बचने में समर्थ हो सकता है और कोई मार्ग, तरीका, साधन या शैली नहीं है। इसलिए विभिन्न कष्टों, पीड़ाओं, बन्धनों, चिन्ताओं व क्लेशों से बचने के लिए आओ विवेकी जनो ! उस निराकार, सर्वज्ञ, दुःख-निवारक ईश्वर को जाने यही एक उपाय है।

◆◆◆

कुछ समस्याओं के कारण इस वर्ष आर्य संकल्प पत्रिका का 5 अंक ही निकल पाया जनवरी 2017 से यह पत्रिका प्रतिमाह प्रकाशित होगी। पत्रिका को और परमार्जित किया जा रहा है। इसकी सदस्य संख्या बढ़ाने में सहयोग प्रदान करें। जो व्यक्ति 20 सदस्य बनायेगा, उनका नाम पत्रिका प्रचारक मण्डल में प्रकाशित होगा।

- सम्पादक

www.thearyasamaj.org

नर से नरोत्तम बने अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द को सादर प्रणाम

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री
अन्तर्राष्ट्रीय कथाकार

हे भव्यमूर्ति ! उन्नत ललाट ! हे मानवता के चिरधन !
हे ज्ञानदीप ! हे यश:पुंज ! हे परमतपस्वी सन्यासिन्!
हे क्रान्तदर्शी! भारत माता के गौरव के सुन्दर कण!
हे महापुरुष ! हे देशभक्त ! श्रद्ध प्रसून तुमको अर्पण!

धन्य हैं वे महापुरुष जो देशसेवा में दिनरात जुटे रहते हैं। धन्य है यह मातृभूमि जिन्होंने ऐसे देशभक्तों, समाज-सुधारकों, ज्ञानियों, ऋषियों को जन्म दिया। जिन्होंने मातृभूमि की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। इतिहास इस बात की साक्षी है कि विश्व को शान्ति और सहअस्तित्व के सिद्धान्त की शिक्षा देने वाले महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, राम कृष्ण के इस धराधाम ने पौरुष और बलिदान के मंच पर भी सर्वोत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। बलिदान की अमर परम्परा तो भारत की धरोहर है।

सरदार वल्लभ भाई पटेल लिखते हैं कि स्वामी श्रद्धानन्द की याद आते ही 1919 का दृश्य मेरी आँखों के सामने खड़ा हो जाता है। सरकारी सिपाही फायर करने की तैयारी में है। स्वामी जी छाती खोलकर ललकारते हुए कहते हैं-'लो चलाओ गोलियाँ। उनकी उस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं हो जाता?मैं चाहता हूँ कि उस वीर संन्यासी का स्मरण हमारे अन्दर सदैव वीरता और बलिदान के भावों को भरता रहे।

• विश्व के इतिहास में यह पहली घटना है कि जामा मस्जिद की बेदी पर गैर-मुसलमान स्वामी श्रद्धानन्द महाराज को सादर एवं ससम्मान बुलाकर मुसलमानों ने व्याख्यान कराया। इस व्याख्यान से मुसलमान इतने प्रभावित हुए कि तीसरे दिन स्वामी श्रद्धानन्द जी को मस्जिद फतहपुरी दिल्ली में भी आमंत्रित किया। स्वामी श्रद्धानन्द जी से एक मुसलमान ने पूछा-स्वामी जी! वेद बड़े हैं या कुरान? स्वामी जी ने सहज भाव से उत्तर दिया-मैं उस पुस्तक को बड़ा मानता हूँ, जिसमें जन्म से नहीं कर्म से प्रधानता बताई है।

ऐसे महर्षि दयानन्द के सपनों को साकार करने वाले, स्त्री शिक्षा आन्दोलन के सूत्रधार, शुद्धि सुदर्शन के चक्रधर, दलितोद्धारक, दीन अनाथपालक, गुरुकुलीय शिक्षा के उद्धारक, राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक, आत्मोन्नति के पथ प्रदर्शक धीर, वीर, संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द को सादर प्रणाम।

आइये इस बलिदान दिवस पर संकल्प लें कि हम स्वामी जी के पदचिन्हों पर चलने वाले सच्चे देशभक्त बनें। शुद्धि कार्यक्रम को और अधिक प्रभावी बनावें। बिछड़ों को गले लगावें।

फ्लैट नं. C-1, पूर्ति अपार्टमेंट
(F-ब्लॉक) विकासपुरी, नई दिल्ली-1

♦♦♦

"आचार्य पं. उमाकान्त जी में था पाण्डित्य एवं व्यक्तित्व का अद्भुत संगम

पूज्य पं. उमाकान्त जी उपाध्याय का निधन एक लम्बी बीमारी के पश्चात् दिनांक 2 नवम्बर, 2014 तदनुसार बार रविवार को प्रात: आठ बजे हो गया। वे न केवल बंगाल या भारत के ही विख्यात विद्वान् व साहित्य साधक थे बल्कि पूरे विश्व में उनका एक वैदिक विद्वान् व साहित्य साधक के रूप में बड़ा सम्मान था। वे एक असाधारण व्यक्तित्व के धनी थे और उनके व्यक्तित्व तथा विद्वता का प्रभाव एक अनजान व्यक्ति पर भी पड़ता था। पण्डित जी केवल कलकत्ता के ही नहीं बल्कि पूरे बंगाल की प्रहचान बन गये थे। मेरी उनमें बहुत अधिक श्रद्धा थी और वे भी मुझे बहुत प्यार करते थे। जब कभी भी मिलते थे या फोन करते थे तो कहते थे कि मैं आपके लेख अनेक आर्य पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ता हूँ तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। आपके लेखों में निरन्तर प्रगति देखकर मेरे मन को बड़ी शान्ति मिलती है। आप ऐसे ही लेख लिखते रहें ताकि आर्य जगत् में कलकत्ता का नाम सबके मुख पर आता रहे।

मेरे से उनका प्रेम का परिचय इन्हीं बातों से लगता है कि मेरे चार पुत्र और एक पुत्री हैं। एक पुत्र चि. दिनेश का पुनर्विवाह मुझे एक खड़गपुर की विधवा लड़की से दुबारा करना पड़ा जिसकी गोद में $3^1/_2$–4 साल की एक बच्ची भी है, यह भी अपनी माँ के साथ आ गई थी। इस प्रकार मैंने कुल छ: विवाह संस्कार करवाए। प्रसन्नता की बात यह है कि सभी विवाह संस्कार पूज्य आचार्य पं. उमाकान्त जी के कर कमलों द्वारा सुसम्पन्न हुए और संस्कारों की सभी ने प्रशंसा की। खड़गपुर वाले साह जी तो इतने अधिक प्रसन्न हुए कि उन्होंने अपने एक मित्र के लड़के का विवाह संस्कार भी पण्डित जी से करवाया। इससे भी अधिक प्रसन्नता की बात यह है कि विवाह केवल कलकत्ता में ही नहीं, संस्कारों के लिए आचार्य जी को कभी झरिया, कभी रामगढ़ (झारखण्ड) कभी फारबिसगंज (बिहार) भी जाना पड़ा। उन्होंने कभी भी अपनी स्वीकृति देने में देरी नहीं की और पूछने पर सदैव प्रसन्नता ही प्रकट की। यह उनकी महानता थी। बहुत समय पहले की बात है, पण्डित जी स्व. लालमन जी आर्य से मिलने हिसार गये थे। वहाँ से उनको स्व. अमीलाल जी आर्य से मिलने बहल जाना था। हिसार से बहल जाते समय मेरा गाँव देवराला, रास्ते में आता है। उस समय मेरे बहनोई पूज्य फूलचन्द जी आर्य मुरीरा वाले भी जीवित थे। पण्डितजी, लालमन जी आर्य, व फूलचन्द जी आर्य तीनों ही बहल जाते समय 2-3 घण्टों के लिए मेरे स्व. पिता गोविन्दराम आर्य जिनको सम्मान के रूप में सभी "प्रधानजी" के नाम से सम्बोधित करते थे, उनसे मिलने के लिए देवराला ठहरे। पण्डित जी मेरा घर देखकर तथा पिता जी के सत्कार व सम्मान से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे कई बार जब भी मुझसे मिले तब उस यात्रा की चर्चा करना कभी नहीं भूले।

वैसे तो पण्डित जी कलकत्ता के सभी आर्य समाजों के आचार्य थे, फिर भी आर्य समाज कलकत्ता के विशेष रूप में आचार्य थे। वे आचार्य पद पर रहते हुए पचास वर्षों से भी अधिक समय तक "आर्य संसार" मासिक पत्रिका का सम्पादन

बहुत ही योग्यता के साथ बहुत ही सुन्दर ढंग से किया जिससे इस पत्रिका को आर्य जगत् में एक विशेष स्थान प्राप्त है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मेरे लेख व कविताएँ पण्डित जी बराबर प्रकाशित करते रहते थे। अब भी इस पत्रिका का सम्पादक मण्डल मेरे लेख व कविताओं को बराबर प्रकाशित कर रहा है, इसलिए मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। यह पत्रिका कलकत्ता के सभी परिचित आर्य समाजियों के पास जाती है इसलिए इस पत्रिका में लेख व कविता का प्रकाशित होना, अपना एक अलग महत्व रखता है। पण्डित जी ने काफी पुस्तकें भी लिखी है तथा कई स्मारिकाओं का सम्पादन भी किया है जो आर्य जगत् में अपना एक विशेष स्थान रखती है। उन्होंने आर्य समाज कलकत्ता का और आर्य समाज बड़ा बाजार का इतिहास भी लिखा है, जिनको पढ़ने से उनकी विद्वता, परिश्रम, लगन और जानकारी का प्रत्यक्ष प्रदर्शन हो जाता है। जिस प्रकार मेरे प्यारे भारत देश की गुलामी की जंजीरों को काटने के लिए सैकड़ों नहीं सहस्त्रों क्रान्तिकारियों ने अपना जीवन भेंट चढ़ाया, जिनमें दो परिवारों का योगदान अत्यधिक है। सन् 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम के बाद सन् 1897 में प्रथम बार एक ही परिवार के तीन चापेकर बन्धु जिनके नाम दामोदर दास चापेकर, बालकृष्ण चापेकर व वासुदेव चापेकर था, उन्होंने पूना में अंग्रेजी सरकार के अन्याय के विरुद्ध फाँसी के फन्दे को चूमा। दूसरा नाम आता है, वीर सावरकर बन्धुओं का जिनके नाम थे, बड़े का नाम गनेश पन्त सावरकर बीच वाले का नाम सुविख्यात विनायक सावरकर तथा छोटे का नाम नारायण सावरकर था, जिन्होंने देश को आजादी दिलाने के लिए अपने पूरे जीवन को कालापानी अण्डमान की जेल की अमानवीय यातनाओं को सहन करते हुए तिल-तिल करके बलिदान कर दिया। इन परिवारों ने तो देश को स्वतन्त्रता दिलाने के लिए अपना जीवन न्यौछावर किया, उसी प्रकार पं. उमाकान्त जी उपाध्याय का पूरा परिवार जिसमें उनके बड़े भ्राता पूज्य स्व. पं. रमाकान्त जी, छोटा भाई स्व. पं. शिवाकान्त जी, चचेरे छोटा भाई स्व. पं. श्रीकान्त जी व भतीजा स्व. पं. वाचस्पति जी आते हैं। इन्होंने भी अपना पूरा जीवन वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार के लिए तथा महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज की उन्नति व समृद्धि के लिए आहूत कर दिया। आर्य जगत् इनका सदैव सम्मान करते हुए ऋणी रहेगा।

पं. उमाकान्त जी उपाध्याय के जाने से आर्य जगत् की जो अपूरणीय क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना असम्भव सा प्रतीत होता है। ईश्वर इस क्षति को शीघ्र ही पूर्ति करे जिससे आर्य समाज का कार्य सुचारू रूप से आगे बढ़ता रहे। मैं पण्डित जी के निधन पर अपना गहरा शोक प्रकट करता हूँ और उनकी आत्मा की सद्गति व शान्ति प्राप्ति के लिए तथा उनके परिवार वालों को इस दारूण दुःख को सहन करने की शक्ति दे इसके लिए परम् पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ। साथ ही आचार्य जी की साहित्य साधना व आर्य समाज की सेवा को नमन करते हुए इनके प्रति अपने ब्रह्मा-सुमन समर्पित करता हूँ।

खुशहाल चन्द्र आर्य
C/o गोविन्द राम आर्य एण्ड सन्स
180, महात्मा गांधी रोड (दो तल्ला)
कोलकाता-7

♦♦♦

आश्रम-व्यवस्था

–लेखक-आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति

जिस प्रकार मनुष्य-समाज को वेद ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों विभागों में बाँटा है, उसी प्रकार प्रत्येक नर-नारी के वैयक्तिक जीवन को भी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास इन चारों आश्रमों में विभक्त किया है।

ब्रह्मचर्याश्रम में प्रत्येक बालक और बालिका को अपनी रुचि, संस्कार और सामर्थ्य के अनुसार चारों वर्णों में से किसी एक को अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर, उसके कर्त्तव्यानुरूप योग्यता सम्पादन करनी होती है। शरीर, मन, आत्मा की शक्तियों का पूर्ण संचय करके स्वयं को अभीष्ट वर्ण के आदर्शानुसार ढालना होता है। समाज के प्रत्येक बालक और कन्या को जीवन के प्रथम भाग में गुरुकुल में आचार्य के पास जाकर ब्रह्मचारी रहना होता है। अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड के पाँचवें सूक्त में इस बात का अद्भुत कवितामय ढंग में स्पष्टतया उल्लेख है कि राष्ट्र के प्रत्येक कुमार और कुमारी को आचार्य के पास रहते हुए ब्रह्मचर्य के जीवन में संसार की सब चिन्ताओं से मुक्त होकर, अपने मन और इन्द्रियों का पूर्ण संयम करके, अपने शरीर को बल से, मस्तिष्क को (तृण से लेकर परमात्मा तक के सब पदार्थों से सम्बन्ध रखनेवाली) भाँति-भाँति की विद्याओं से तथा आत्मा को पवित्र गुणों से भरने की एकमात्र चिन्ता रखनी चाहिए। इसी बात को ऋग्वेद के नवम मण्डल के एक सौ बारहवें सूक्त में बड़ी सुन्दर रीति से दर्शाया गया है कि शिक्षणालयों में विद्यार्थियों की अभिरुचि और शक्ति के अनुसार उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार की विद्याओं और कलाओं (Arts) को पढ़ाने का प्रबन्ध होना चाहिए। इस प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी पूर्ण संयम का जीवन व्यतीत करते हुए (चारों में से किसी एक वर्ण को) अपने जीवन के लक्ष्य को निर्धारित कर लेना चाहिए और उस वर्ण से सम्बन्ध रखनेवाले किसी क्रियाक्षेत्र का वरण करके उसके द्वारा समाज की सेवा करने के योग्य अपने-आप को बनाने के लिए, आवश्यक विद्या की प्राप्ति में जुट जाना चाहिए।

गृहस्थाश्रम

• इस भाँति समाज की सेवा के लिए पूरी तरह अपने-आप को तैयार करके समाज की क्रियात्मक सेवा करने के लिए वह गृहस्थ-आश्रम में प्रवेश करता है। गृहस्थाश्रम में अपने गुण, कर्म, स्वभाव की सवर्ण कन्या और सवर्ण वर से विवाह करके स्त्री-पुरुषों को अपने संकल्पित वर्ण के अनुसार राष्ट्र-सेवा के सांसारिक कर्त्तव्यों का जीवन व्यतीत करना होता है। जीवन के प्रथम भाग में ब्रह्मचारी रहकर स्त्री-पुरुषों को जीवन के दूसरे भाग में गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। ऐसा विधान वेदों में अनेक स्थानों पर किया गया है। इस सम्बन्ध में विशेष रूप से ऋग् 10, 85, 2 और अथर्व 14-1, 2 सूक्त देखने योग्य हैं। गृहस्थाश्रम में राष्ट्र के लिए उत्तम सन्तान उत्पन्न करने तथा क्रियात्मक और सशक्त रूप में राष्ट्र की अपने-अपने वर्ण के अनुसार सेवा करने के पश्चात् स्त्री-पुरुषों को अगले आश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

वानप्रस्थाश्रम

अगला आश्रम वानप्रस्थ है। इस आश्रम में जीवन के तीसरे भाग में आना होता है जहाँ नर-नारी का अपना समय संन्यासाश्रम की तैयारी करने और पहले दो आश्रमों की शिक्षा और अनुभवों के आधार पर जाति के बालक और बालिकाओं को निःशुल्क विद्या पढ़ाने आदि जन-सेवा के कामों में लगाना होता है। जिन नर-नारियों ने ब्रह्मचर्याश्रम में ब्राह्मण-वर्ण का चुनाव किया था, वे तो गृहस्थाश्रम में भी गुरुकुलों में पढ़ाने का काम ही करेंगे। वानप्रस्थाश्रम का विधान देखने के लिए ऋग् 10-146 और अथर्व 9-5 सूक्त देखने चाहिए।

संन्यासाश्रम

जीवन के चतुर्थ भाग में नर-नारियों को संन्यासाश्रम में प्रवेश करना होता है। इस आश्रम में अपने-अपने-पराए देश-विदेश के भेद को भुलाकर मनुष्य-मात्र को धर्म, सत्य और न्याय का उपदेश देते हुए नगर-नगर और गाँव-गाँव में विचरना होता है। संन्यासाश्रम में मनुष्यमात्र को अपना कुटुम्बनी समझने की भावना उत्पन्न करनी होती है। इस आश्रम में राग-द्वेष, लोभ-मोह, काम-क्रोध, भय-शोक, मान-अपमान आदि सब द्वन्द्वों से ऊपर उठकर सच्चिदानन्द ब्रह्म में अपनी वृत्ति लगाए रखनी होती है। प्राणिमात्र पर दया और मनुष्यमात्र को सत्य और धर्म का उपदेश करते हुए विचरना होता है। संन्यासाश्रम में वही प्रवेश कर सकता है जिसने स्वयं को ब्रह्मचर्य आश्रम में ब्राह्मण बना लिया है, अथवा (ब्रह्मचर्य में ब्राह्मण न बनने की अवस्था में) पुनः वानप्रस्थ में जाकर साधना द्वारा अपने को ब्राह्मण बना लिया है। इस प्रकार संन्यास में केवल ब्राह्मण ही जा सकता है। शेष तीन आश्रमों का पालन द्विज-मात्र को करना होगा। संन्यासी संसार-भर का उपदेष्टा और गुरु होने का भार अपने कन्धों पर उठा लेता है। इसीलिए संन्यासी को वैदिक शास्त्रों में जगद्गुरु (World teacher) कहा जाता है। शास्त्रों में संन्यासी को परिवाट् अर्थात् सर्वत्र विचरण करनेवाला और दिशा-निर्देश (दिशाओं का स्वामी) कहा गया है, क्योंकि उसका यह विधान विशेषतया ऋग् 9-113वें में सामान्यतया अन्यत्र भी किया गया है।

वेद के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को कम-से-कम सौ वर्ष तक अवश्य जीना चाहिए। सौ वर्ष की आयु को शास्त्रकारों ने मनोवैज्ञानिक आधार पर पच्चीस-पच्चीस वर्ष के चार आश्रमों में बाँट दिया है, जिसके अनुसार व्यक्ति को सामान्यतः प्रत्येक आश्रम में 25 वर्ष तक रहना होगा। आवश्यकता पड़ने पर गृहस्थ-आश्रम की अवधि में 4-5 वर्ष की वृद्धि भी हो सकती है, क्योंकि शास्त्रकारों ने लिखा है कि जब पुत्र के पुत्र हो जाए तब वानप्रस्थ में प्रवेश करे। इसमें कभी-कभी 4-5 वर्ष अधिक लग जाना भी संभव है। इसके बाद प्रत्येक पुरुष को वानप्रस्थ में जाना ही होगा। यह अवसर उसे इसलिए दिया जाता है कि वह अपने को ब्राह्मण बना सके जिससे उसका संन्यास तथा मोक्ष का मार्ग प्रशस्त हो सके, अन्यथा मृत्युपर्यन्त वानप्रस्थ में ही रहे।

शेष पेज 17 पर

www.thearyasamaj.org

महात्मा हंसराजजी द्वारा

आर्य-विद्वानों के शास्त्रार्थ का सभापतित्व

–डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

यह उस समय की बात है जब आर्य विद्वानों का पौराणिकों, मुसलमानों तथा ईसाइयों से शास्त्रार्थ का जमाना था। लाहौर में आर्यसमाज की अत्यधिक सक्रियता थी। डी.ए.वी. कॉलेज, रिसर्च डिपार्टमेंट और दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय आदि संस्थाओं के कारण भी आर्य विद्वानों तथा उपदेशकों का समुदाय भी लाहौर में अच्छी खासी संस्था में था। आर्य विद्वानों का एक वर्ग जब यह मानने लगा कि "निरुक्तकार यास्क वेद में इतिहास मानते हैं।" तब इस शास्त्रार्थ की आवश्यकता अनुभूत हुई। यह शास्त्रार्थ आज से 84 चौरासी वर्ष पूर्व 1931 में 18 मई से 22 मई तक प्रिंसिपल श्री साईंदास जी की कोठी पर हुआ। यह शास्त्रचर्चा 18, 19 तथा 21 मई को सायं और प्रातः दोनों समय तथा 20 और 22 मई को प्रातःकाल हुई थी। शास्त्रार्थ का विषय था–"निरुक्तकार यास्क वेद में इतिहास मानते थे या नहीं?" शास्त्रार्थ का सभापतित्व महात्मा हंसराजजी ने किया था। महात्माजी के अनुरोध पर विशिष्ट महानुभावों में महात्मा नारायण स्वामीजी तथा स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज भी उपस्थित थे। इतिहास पक्ष मानने वाले विद्वान् थे–(1) आचार्य विश्वबन्धु शास्त्री (2) पं. राजाराम शास्त्री (3) पं. चारुदेव शास्त्री। इतिहास पक्ष को न मानने वाले विद्वानों के नाम इस प्रकार हैं जो शास्त्रार्थ में सम्मिलित हुए–(1) पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु (2) पं. भगवद्दत्तजी (3) पं. बुद्धदेवजी मीरपुरी (4) ठाकुर अमरसिंहजी (जो शास्त्रार्थ महारथी के रूप में प्रसिद्ध हुए और संन्यास लेकर महात्मा अमर स्वामी सरस्वती के नाम से जाने गये) (5) पं. श्री गुरुदत्तजी शास्त्री (मुनिवर गुरुदत्त विद्यार्थी से ये भिन्न व्यक्ति हैं)। इस शास्त्रार्थ में बीच-बीच में उन पण्डितों ने भी अपने विचार व्यक्त किये जो वेद में इतिहास नहीं मानते थे। उन पण्डितों के नाम इस प्रकार हैं–(1) पं. रामगोपाल शास्त्री वैद्य (2) पं. प्रियरत्न आर्ष (जो आगे चलकर स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक नाम से प्रसिद्ध हुए) (3) पं. आर्यमुनिजी (4) पं. शंकरदेवजी (प्रसिद्ध वैयाकरण और पं. ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के मित्र) (5) पं. देवप्रकाशजी अरबी फाजिल (6) पं. धर्मेन्द्रनाथ जी (7) पं. रामलालजी शास्त्री (आगे चलकर ये आचार्य विश्वश्रवाः 'व्यास' के नाम से प्रसिद्ध हुए) (8) स्वामी अच्युतानन्दजी (9) स्वामी नित्यानन्द (10) महता रामचन्द्रजी। शास्त्रार्थ को सुनकर अपने विचार व्यक्त करने वाले सम्मान्य स्वामियों को छोड़कर लाला देवीचन्दजी भी थे। शास्त्रार्थ में एक जगह श्री बहादुरमलजी ने भी कुछ कहा है।

उस समय टेप रिकार्डर का आविष्कार नहीं हुआ था, अतः शास्त्रार्थ को उसी समय लेखकों द्वारा लिपिबद्ध किया गया। उक्त तिथियों में दोनों समयों के अधिवेशनों की कार्यवाही लिखने वालों

में लाला खुशहालचन्दजी भी (आगे चलकर महात्मा आनन्द स्वामी के नाम से प्रसिद्ध संन्यासी, आर्यनेता और पत्रकार) थे। आर्य प्रादेशिक सभा से सम्बद्ध पण्डितों में आर्य प्रादेशिक सभा के साहित्य विभाग के अध्यक्ष पं. वाचस्पतिजी (आगे चलकर इन्होंने 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम तथा द्वितीय समुल्लास का भाष्य किया तथा 'आर्याभिविनय:' का विद्वत्तापूर्ण सम्पादन भी) तथा पं. रघुनन्दन शास्त्री थे। अन्य लिपिकारों में ब्र. याज्ञवल्क्य तथा ब्र. यश:पाल ये दोनों छात्र थे जो श्री पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के शिष्य (विरजानन्द आश्रम लाहौर में पढ़ने वाले) थे। इन लेखकों के अनुसार लिखी गई सामग्री के आधार पर पं. वाचस्पतिजी एम.ए. ने एक प्रामाणिक कॉपी तैयार की। इससे दो कॉपियाँ तैयार की गई। एक आर्य प्रादेशिक सभा के कार्यालय में रखी गई। दूसरी कॉपी पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासुजी के पास रही। पं. ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु इस कॉपी को पाकिस्तान बनने पर लाहौर से अपने साथ ले आये। यह शास्त्रार्थ विद्वानों के मध्य शास्त्र-तत्व-निर्णय के लिए हुआ था, सार्वजनिक नहीं था। अत: इसे उस समय प्रकाशित नहीं किया गया। इस शास्त्रचर्चा में भाग लेने वाले विद्वानों में दो (महात्मा अमरस्वामीजी तथा आचार्य विश्वश्रवा:जी) को छोड़कर शेष के दिवंङ्गत हो जाने के बाद पं. श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु के प्रमुख शिष्य पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने आर्यसमाज की स्थापना शताब्दी वर्ष 1975 ई. में रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़ सोनीपत (हरियाणा) से इस शास्त्रार्थ को छपवा दिया। इस मुद्रित शास्त्रार्थ को छपवा दिया। इस मुद्रित शास्त्रार्थ की मात्र 250 ढाई सौ प्रतियाँ छापी गईं।

• इस शास्त्रार्थ-सभा का सभापतित्व महात्मा हंसराजजी ने किया था। सभा की कार्यवाही को सुचारू रूप से संचालित करने के लिए तथा नियमों के निर्धारण में भी महात्माजी की भूमिका थी। मध्य-मध्य में भी प्रधान (सभापति) होने के नाते महात्माजी को बार-बार हस्तक्षेप करना पड़ता था। शास्त्रार्थ को पूरा पढ़ने से यह विदित होता है कि अधिकांश लोग यह चाहते थे कि शास्त्रार्थ का विषय होना चाहिए–'वेद में इतिहास है या नहीं?' किन्तु यह विषय न होकर यह विषय निश्चित हुआ कि 'निरुक्तकार यास्क वेद में इतिहास मानते हैं या नहीं?' इसका कारण यह है कि इतिहासपक्ष वाले भी आर्यसमाज से जुड़े हुए थे और आर्यसमाज का मन्तव्य वेदों में इतिहास मानने का नहीं है, इसलिए निरुक्तकार यास्क को ढाल बनाया गया। अस्तु।

सम्पूर्ण शास्त्रार्थ को पढ़ने से यह भी विदित होता है कि उन आर्य विद्वानों का पक्ष प्रबल रहा जो यह मानते थे कि 'निरुक्तकार यास्क वेद में इतिहास नहीं मानता।' इस शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में पं. युधिष्ठिर मीमांसक, महात्मा अमरस्वामी परिव्राजक तथा आचार्य-विश्वश्रवा: 'व्यास' जी से मैंने उनके जीवनकाल में बातचीत की थी उसका सारांश भी मैं यहाँ बताना चाहूँगा।

महात्मा अमर स्वामी : इस छपे हुए शास्त्रार्थ में पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी का वक्तव्य सबसे अधिक है और इसका कारण यह है कि जिज्ञासुजी अपने शिष्यों के साथ शास्त्रार्थ की प्रत्येक बैठक से पूर्व और पश्चात् भी अपने वक्तव्य का विशेषकर व्याकरण-प्रक्रिया का लिखित रूप तैयार कर लेते

थे। उनके उस लिखित वक्तव्य को जो शास्त्रार्थ में भी बोला जाता था, शास्त्रार्थ को लिखने वालों को भी इससे सहूलियत हो जाती थी।

आचार्य विश्वश्रवा:जी : शास्त्रार्थ के समय (सन् 1931 ई. में) मैं युवा (आचार्यजी का जन्म 1904 ई. में हुआ था) था, उस समय के स्वाध्याय के अनुसार प्रश्नों के उत्तर दिये गये। अब हमें बहुत-सी बातें समझ में आई हैं। अत: इस समय हम उस समय के प्रश्न का उत्तर ज्यादा ठीक तरीके से दे सकते हैं। जैसे 'कुरुङ्गो राजा बभूव' (निरुक्त 7/22) यास्क का यह कथन वेद में इतिहास को सिद्ध नहीं करता। 'कुरुङ्ग' नाम का कोई व्यक्तिविशेष जो राजा हुआ उसका वर्णन यदि वेद में है तो फिर इस शब्द का निर्वचन करने की क्या आवश्यकता है–'कुरुगमनाद्वा कुलगमनाद्वा इत्यादि।' अत: जो कुरुङ्ग का निर्वचन है वह वेद को अभिप्रेत है। जो 'राजा बभूव' कहा गया है उसका अभिप्राय यह है कि यास्क को ऐसे किसी राजा का भी नाम मालूम था जिसके नाम 'कुरुङ्ग' था। अत: इस नाम का एक राजा भी हो चुका है यह यास्क कहना चाहते हैं। यास्क का यह स्वभाव है कि स्वभिमत पक्ष नैरुक्त पक्ष में वेद के पद का निर्वचन करके सभी नाम आख्यातज है यह वैदिक सिद्धान्त पुष्ट करते हैं । साथ ही अप्राकरणिक बात इतिहासादि की बात भी कह देते हैं जिसका वेद से सम्बन्ध नहीं होता।

दूसरी बात आचार्यजी ने यह बताई कि इस शास्त्रार्थ में गुरुकुल काँगड़ी के पं. बुद्धदेव विद्यालंकार भी उपस्थित होकर शास्त्रार्थ में भागीदारी चाहते थे। परन्तु महात्मा हंसराजजी ने मना कर दिया। वे डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर, अनुसन्धान विभाग, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय और विरजानन्द आश्रम के पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु आदि से सन्तुष्ट थे, बाहर वालों की कोई आवश्यकता ही नहीं थी।

पं. युधिष्ठिर मीमांसक : शास्त्रार्थ जिस रूप में हमारे पास था उसी रूप में हमने छापा है। कोई एक शब्द का भी घटाव-बढ़ाव नहीं किया। वेद का अर्थ करना निरुक्त का कार्य है। व्याकरण और निरुक्त दोनों वेदाङ्गों का पृथक्-पृथक् कार्य है। शब्द-व्युत्पत्ति व्याकरण शास्त्र का विषय है, किन्तु अर्थ का निर्वचन निरुक्त शास्त्र का विषय है। अर्थात् व्याकरण में शब्द का प्राधान्य है जबकि निरुक्त में अर्थ का। जो वेदों में इतिहास मानते हैं वो निरुक्त को नहीं समझते। यही कारण है कि सिद्धेश्वर वर्मा तथा काशीनाथ राजवाड़े और इनके अनुयायी वेदों में इतिहास मानने वाले लोग यास्क की आलोचना ही नहीं करते अपितु उनसे असहमत होते हुए अधिकांश निर्वचनों को बेहूदा भी बताते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती वेदार्थ में पूरी तरह यास्कीय निर्वचनों पद्धति का आश्रय लेकर वेदों का सत्यार्थ प्रस्तुत करते हैं।

अब हम अगले पृष्ठों में महात्मा नारायण स्वामी तथा महात्मा हंसराजजी का इस शास्त्रार्थ के अन्त में दिया गया वक्तव्य प्रस्तुत करते हैं :

महात्मा नारायण स्वामीजी : मैं लाला देवीचन्दजी से सहमत हूँ कि इस सभा से लाभ हुआ। शुरू में बताया गया था कि पं. विश्वबन्धु जी को तथा पं. राजारामजी को वेदों के सम्बन्ध में

सन्देह है, उनकी निवृत्ति हो जाय। परन्तु इतने विचार से पता लगा कि पं. विश्वबन्धुजी का निश्चित पक्ष है कि वेदों में इतिहास है। यह Western Scholars का पक्ष है। यदि पहिले से ही इस बात को उनका पक्ष मानकर चलाया जाता तब अच्छा होता। और साथ में यह भी पता लगता है कि उनको जिज्ञासा भी नहीं है। यदि जिज्ञासा होती, तो इस बात पर क्यों अड़ते कि अमुक मेरे पीछे न बोले। उनको जिज्ञासा है यह तो वही मान सकता है जिसके दिमाग में बुद्धि का खाना खाली हो। यह एक सच्चाई है, चाहे कड़वी है। इसमें पं. विश्वबन्धुजी का दोष नहीं। इसमें हमारी शिक्षा-पद्धति का दोष है। परन्तु फिर भी उन्हें गम्भीरता से विचार करना चाहिये। यह परिणाम इस सम्मेलन का अवश्य निकलेगा।

जो विषय उपस्थित हुआ 'कुरुङ्ग' वाले मन्त्र पर ही रहा। यदि वेद में इतिहास मान लिया जाये, तो वेद का बहुत-सा भाग निकम्मा हो जायेगा। वेद ऋत है, ऐसी सच्चाई है जो तीनों कालों में एक जैसी रहने वाली है। आम तौर पर 'स्वाध्याय' शब्द वेद के स्वाध्याय के लिये रूढ है। अब कल्पना करो यदि कुरुङ्ग वाले मन्त्र का अर्थ यह हो कि-कुरुङ्ग राजा था, उसने दान दिया तो हम उसका स्वाध्याय क्यों करें?व्यर्थ में भाट क्यों बनें?यदि दूसरे पक्ष वालों का अर्थ, जो कि यौगिक है, मान लिया जाये, तो वह बड़ा गौरवयुक्त है। वेद यदि हमको प्यारे हैं तो ऐसे ही सुन्दर अर्थ होने चाहिये। नहीं तो चाहे हम कहें कुछ भी, वास्तव में वेद हमको प्यारे नहीं हैं।

जिन लोगों ने प्राचीन भाषा पर विचार किया है, वह जानते हैं कि उनके अनेक तरह से अर्थ किये गये हैं। इस तरह से वेद के अनेक अर्थ होने का कारण यही है कि वेद का पठन-पाठन नहीं रहा। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के बीस तरह के अर्थ नहीं हो सकते। नियामक होने की बात तो अभ्यास से ही ठीक होगी। परन्तु बाईस-चौबीस करोड़ आदमी ऐसे मौजूद हैं, जिनकी Traditions आदि से वेद के अर्थ निकल सकते हैं, हमें यत्न करना चाहिये। योरोपियन्स के अनुवाद अब भी वैसे बेहूदा हैं, जैसे सदा से रहे हैं। मैंने ग्रिफिथ के चारों वेदों का भाष्य पढ़ा। जैसे वेद में 'अज एकपात्' शब्द आया, उसका अर्थ है परमात्मा के एक अंश में। परन्तु ग्रिफिथ ने अनुवाद किया है One footed goat । उनमें अच्छी बातें भी हैं, परन्तु वह तुके मिलाते हैं। हमारे साथ Traditions है। हमारा पक्ष प्रबल है। हमें चाहिये कि हम यत्न करें। मैंने कई बातें नोट की हैं, समय मिलने पर विचार करूँगा।

महात्मा हंसराजजी (प्रधानजी) : जिस बात पर हमने विचार किया, वह इतनी सादी नहीं जितनी कि समझी जाती है। स्वामीजी कहते हैं कि उन्होंने निरुक्त के आधार पर, ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर वेदभाष्य किये। किन्तु साथ ही यह ठीक ही है कि ये पुस्तकें परत:प्रमाण हैं, स्वत: प्रमाण तो वेद है। जहाँ कोई ऐसा वचन आया, जो वेद-विरुद्ध है, तो उसे उन्होंने प्रामाणिक नहीं माना। मेरी इच्छा थी कि विचार निरुक्त के उन स्थलों पर ही रहता, परन्तु साढ़े तीन दिन विचार केवल मन्त्रों के शब्दों और अर्थों के ढंग के सम्बन्धमें होता रहा, यह भी जरूरी है।

इस विषय में नई बात Western Scholars की थी कि आर्य सभ्यता बड़ी साधारण है। जिन ऋषियों के नाम सूक्तों पर लिखे हैं, उन्होंने वह कवितायें बनाईं। वह (पश्चिमी विद्वान्) उन मन्त्रों में इतिहास भी मानते हैं, सारा इतिहास वेदों में से निकालते हैं। सायण वेद को अपौरुषेय मानता है और अपनी भूमिका में लिखता भी है। और टीकाकार भी ऐसा लिखते हैं। निरुक्त के टीकाकार भी एक सिद्धान्त लिखते हैं कि वेद में इतिहास नहीं है। परन्तु सायण अर्थ करते समय फेल होता है। सायण ने निरुक्त या और प्रमाणों से इतिहास भी निकाले। योरोपियन भी उसी के आधार पर इतिहास निकालते हैं। सायण आदि के भाष्य पढ़ने से उन्हें (पश्चिमी विद्वानों को) यह विचार हुआ कि वेद ऋषियों के बनाये हुए हैं और वे उन्हें वेद का कर्त्ता मानते हैं। परन्तु सनातनधर्मी यह नहीं बताते कि ऋषि कब हुए? वह मानते हैं कि ऋषियों ने वेद-सूक्त बनाये।

यहाँ कहा गया है कि कुमारिल आदि पिछले मीमांसक ईश्वर को न मानते हुए भी वेद के नित्यत्व को मानते थे। और नित्य वेद में इतिहास के विषय में यह माना कि यह बातें और यही ऋषि प्रत्येक कल्प में होते हैं। स्वामी दयानन्द ने उन बातों पर विचार किया, European Theory को रिजेक्ट किया। सायण की थ्यूरी को मान लिया, परन्तु उसके अर्थों को Reject किया। 'शुन:शेप' की कथा को वेद में इतिहास के रूप में मान लिया जाय, तो यह मानना पड़ेगा कि कोई समय था जबकि आर्य लोग यज्ञ में मनुष्य का मांस डाला करते थे। 'अगस्त्य' ऋषि ने हवन शुरू किया, उसने इन्द्र देवता को हवि न दी, वह रोने लगा। वह सूक्त इन्द्र का रोना है। यदि इस प्रकार के अर्थ मान लिये जायें, तो आर्य लोगों का दूसरों के सामने ठहराना मुश्किल हो जायेगा। आपको वेदों को तिलांजलि देनी होगी।

ऋषि के सामने यह प्रश्न आया। स्वामीजी ने तमीज की कि ये ऋषि मन्त्र-द्रष्टा हैं, मन्त्र-कर्त्ता नहीं। इस पर आक्षेप है कि ऋषियों के नाम मन्त्रों में आते हैं। यदि यह मान लिया जाये कि उन ऋषियों ने वे मन्त्र बनाये, जैसे पाराशर ऋषि जो कि व्यास के पिता थे, ने सूक्त बनाये, तो यह बात कैसे संगत हो सकती है कि व्यास से पहले भी सारा वेद पढ़ा जाता था?यह मामूल सवाल नहीं है। इस तरह से यह मानना पड़ेगा कि वेद आदि सृष्टि में नहीं हुआ, या विकासवाद को मानना पड़ेगा। इसे मानते हुए वेदों की थ्यूरी छोड़ देनी पड़ेगी। जैसे मुद्गल का सूक्त है। ऋषि कितना हास्यास्पद हो जाता है कि हमने मुद्गल से अपने शत्रुओं तथा बैल आदि को जीत लिया। यह बुनियादी भेद है, मामूली भेद नहीं। यदि आप इतिहास मानेंगे और सूक्तों पर लिखे ऋषियों को यदि वेद के मन्त्रकर्त्ता मानेंगे, तो यूरोपियन थ्यूरी माननी पड़ेगी और वेदों की थ्यूरी छोड़नी पड़ेगी। स्वामीजी की थ्यूरी है कि ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं, कर्त्ता नहीं।

अब यह ठीक है या गलत, इस विषय में जिनको दयानन्द पर विश्वास हो, ठीक मानेंगे। यदि दूसरी बात मानेंगे, तो वेदों की पोजीशन इञ्जील की तरह हो जायेगी। और इस तरह से मानना पड़ेगा कि वेदों में कई सूक्त मनसुख हो गये अब यह सूक्त

मानने चाहिये। परन्तु कोई प्रमाण इस विषय में नहीं है। अब आपको चाहिये कि तीनों Hypothesis का मुकाबला करके विचारें कि क्या केवल स्वामी दयानन्द की थ्यूरी में दिक्कतें हैं, या दूसरी थ्यूरीज में भी दिक्कतें हैं। स्वामीजी ने कहा है कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनिपर्यन्त ऋषि-मुनियों का एक सिद्धान्त रहा है। आप इसे भी विचारें, मुमकिन है आप में से कुछ लोग गलत मानते हों। यूरोपियन्स कहते हैं कि सिद्धान्त भिन्न-भिन्न थे। आप विचारें कि आपको यह थ्यूरी अपील करती है, या नहीं। यदि आप इसे नहीं मानेंगे, तो यूरोपियन थ्यूरी को मानना होगा। इसमें आर्यसमाज की बदकिस्मती है कि स्वामीजी के जीवन ने वफा न की। स्वामीजी चाहते थे कि वेदों का भाष्य करके फिर थोड़ा-सा आराम करके दर्शनादि पर भी भाष्य करेंगे, किन्तु यह न हो सका।

सिद्धान्त पर विचार करके नतीजे पर पहुँचे, तो अच्छा है। अगर नतीजे पर न पहुँचे, तो वह थ्यूरी माननी पड़ेगी। मैं इस बात को नहीं मानता कि आर्यसमाज ने कुछ नहीं किया। आर्यसमाज ने सनातनधर्म को बहुत परे फेंक दिया। ईसाई या और लोग इसके प्रभाव को महसूस करते हैं। आर्यसमाज कॉलेज सेक्शन ने दो इन्स्टीट्यूशन कायम किये-रिसर्च डिपार्टमेंट और ब्राह्म महाविद्यालय खोले। दूसरी पार्टी ने गुरुकुल खोले। यदि आप स्वामी दयानन्द की थ्यूरी को छोड़ेंगे, तो आपकी वेदों को छोड़कर भाग जाना पड़ेगा।

पं. जगन्नाथ ने एक किताब लिखी है। उसमें लिखा है कि कक्षीवान् ऋषि काकेकस में रहता था, और वहाँ उसने सूक्त बनाया। यजुर्वेद की रस्मों पर लगाया गया है। आप यजुर्वेद का मुतआलिया करें, और विचारें कि स्वामीजी का भाष्य अधिक अच्छा है या दूसरे भाष्य। उदाहरण के रूप में अश्वमेध को लीजिये। स्वामीजी ने बताया कि 'अश्व' का अर्थ शतपथ में 'राष्ट्र' है। योरोपियन्स कहते हैं कि सूर्य है। और कई ऐसा कहते हैं कि घोड़े की बलि दी जाती थी, किन्तु वास्तव में यह सीथियन रस्म थी। शंकर आदि ने 'अग्नि' का आग अर्थ किया, परन्तु स्वामी दयानन्द ने 'परमेश्वर' अर्थ किया। रिसर्च डिपार्टमेंट ने डिक्शनरी निकाली, उससे आपको सहायता मिलती है। मुझे खुशी हुई, जब दो साहिबों ने कहा कि वे वेद में इतिहास नहीं मानते, चाहे निरुक्त के विषय में उनकी राय मुखतलिफ है। आर्यसमाज उनसे पूरा लाभ उठा सकता है।

जब यह सिद्ध करने का यत्न होता है कि वेदमन्त्रों में इतिहास है, तब घोर युद्ध करना पड़ेगा। मैं इस बात को बड़ा खराब समझता हूँ कि आपस में झगड़ा हो जाय। मैं तो उन्हें ऊँची जगह बिठाकर उन पर फूल डालूँगा। परन्तु व्यक्तिगत बातों को आप अपने दिल से निकाल दें। स्वामी लोगों ने बड़ी तकलीफ उठाई है कि इतना दु:ख उठाकर इतनी दूर से यहाँ पधारे हैं। मैं उनका हृदय से धन्यवाद करता हूँ। बाहर से आये पण्डितों का भी मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ तथा यहाँ के पण्डितों का भी धन्यवाद करता हूँ। परमात्मा करे कि सौमनस्य बना रहे और स्वामीजी के सिद्धान्त पुष्ट हों।

सम्पर्क : चाणक्यपुरी, अमेठी-227405 (उ.प्र.)

चलभाष: 09415185521

♦♦♦

www.thearyasamaj.org

राजाओं के राजा किसान

डॉ॰ ज्वलंत कुमार शास्त्री

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आज देश में सबसे दयनीय अवस्था से गुजर रहे किसानों के बारे में 'सत्यार्थ-प्रकाश' के छठे समुल्लास में लिखा है–"राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है।" आज सबसे बुरी हालत किसानों की है और किसानों की इस बुरी स्थिति के लिए विरोधी पक्ष सत्ता पक्ष को दोषी ठहरा रहा है तथा सत्तापक्ष विरोधी दलों को भला-बुरा सुना रहा है। किसानों के द्वारा की जानेवाली आत्महत्याओं का सिलसिला पिछ्ले कई दशकों से जारी है। किन्तु इस बार प्रकृति की मार सबसे भयावह है। परिणाम यह हो रहा है कि किसानों की आत्महत्याएँ बढ़ रही हैं। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? किसानों के सारे सपने उनकी सारी उम्मीदें फसलों पर ही तो टिकी होती है। बेटी का ब्याह, बच्चों की पढ़ाई, साहूकार का कर्ज, बीमारी का इलाज। किसान इन सबके लिए सिर्फ अपनी फसलों पर ही तो आश्रित है और यदि लगातार उसका फसल चौपट होती रहे तो किसान बेचारा क्या करे। पिछले साल किसानों ने सूखे की मार झेली थी। फसलों से लागत भी नहीं छूट पाई और अब यह नई आपदा । ऐसी नाजुक स्थिति में सरकार को चाहिए कि अपने तंत्र को चुस्त-दुरुस्त बनाते हुए जल्द से जल्द किसानों को राहत पहुँचाए। बात सिर्फ एसी कमरों में बैठकर रणनीति बनाने तक सीमित न रहे। केवल हुकूमत के लिए नहीं जनता के सुख-दु:ख में खड़े होना सरकार का दायित्व है। दैवी आपदाओं को न सरकार रोक सकती है और न ही इसमें उसका कोई दोष है। सरकार को तो बस वह मरहम बाँटना है जो लोगों के घावों को पूर दें।

कुछ लोग खासकर कांग्रेसी और उनके सहयोगी दल कह रहे हैं कि मोदी का वर्तमान 'भूमि अधिग्रहण विधेयक' सभी समस्याओं की जड़ है। जबकि यह तो अभी लागू ही नहीं हुआ है तो वर्तमानकालिक किसानों की समस्या की जड़ यह कैसे? पुनरपि सभी को एकमत होकर किसानों की सभी समस्याओं पर विचार करना पड़ेगा। देश के 80 फीसद किसानों के पास केवल 17 फीसद जमीन है। उनकी गुजर-बसर सिर्फ खेती के सहारे कैसे होगी? उनके बच्चों के रोजगार के लिए सरकार ने क्या किया? आखिर इतनी बड़ी आबादी के लिए रोजगार के वैकल्पिक साधन तो जुटाने ही होंगे। यदि नरेन्द्र मोदी का रास्ता विपक्षी दलों को ठीक नहीं लग रहा तो वे बताएँ कि क्या रास्ता होना चाहिए? क्या इस बात से कोई इनकार कर सकता है कि विनिर्माण क्षेत्र और इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास के बिना नए रोजगार के अवसर नहीं पैदा किए जा सकते। क्या किसान और उसके परिवार को खेती के अलावा दूसरे रोजगार के साधनों तक पहुँचने का अधिकार नहीं है? वह जरा गाँव में जाकर किसानों के बच्चों से पूछें तो कि वे क्या चाहते हैं। इसमें दो मत नहीं कि पिछले कुछ वर्षों में भारत की

अर्थव्यवस्था में मजबूती आई हैं देश में अरबपतियों की संख्या बढ़ी है। मध्यवर्ग का भी तेजी से विस्तार हुआ है। मैकिन्सी ग्लोबल इंस्टीट्यूट का आकलन है कि वर्ष 2025 तक लगभग 4 प्रतिशत भारतीय मध्यवर्ग भारत के कुल उपभोग का 20 फीसदी हिस्सा हड़प जाएगा। दूसरी तरफ गरीबों की हालत में कोई बदलाव होता नहीं दिख रहा। वे शिक्षा, स्वास्थ्य और दूसरी बुनियादी सुविधाओं से बहुत दूर है।

दरअसल एक किस्म की दोहरी व्यवस्था भारत में हर मामले में देखी जा सकती है। निजी क्षेत्र समाज के एक छोटे वर्ग को स्वास्थ्य से लेकर शिक्षा तक सारी सुविधाएँ उपलब्ध करा रहा है। लेकिन एक बड़ी आबादी सरकार के भरोसे है जिसके पास शिक्षा, स्वास्थ्य तथा दूसरे सामाजिक क्षेत्रों के लिए पर्याप्त बजट नहीं है। यही नहीं इनके लिए जो तंत्र उसने खड़ा किया है, वह प्रायः अक्षम और भ्रष्ट है। इस तरह सोशल डेवलपमेंट के नाम पर जो भी थोड़ा-बहुत सरकारी खजाने से निकल रहा है वह रिश्वत के रूप में मध्यवर्ग के पास ही पहुँचा रहा है। सरकार को अपनी सामाजिक जिम्मेदारी पर ध्यान देना होगा और अपने सिस्टम को चुस्त-दुरुस्त बनाना होगा।

किसानों की समस्याओं को लेकर भारतीय अर्थशास्त्री डॉ. भरत झुनझुनवाला का विचार हमें समीचीन प्रतीत हो रहा है, देखिए–झुनझुनवाला क्या कहते हैं–वर्तमान में सरकार के द्वारा भारी मात्रा में खाद्यान्न, मनरेगा, मिट्टी तेल, फर्टीलाइजर, शिक्षा एवं स्वास्थ्य पर सब्सिडी दी जा रही है, इन सब्सिडी पर हजारों करोड़ रुपये प्रतिवर्ष खर्च किये जा रहे हैं, इस रकम बड़े हिस्से का रिसाव हो जाता है, इसलिए सरकार को चाहिए कि इन तमाम सब्सिडी को समाप्त करके इस रकम को जनता के बैंक में सीधे जमा करा दे, रिसाव घटेगा, जनता के हाथ में क्रयशक्ति बढ़ेगी, बाजार में माँग उत्पन्न होगी और निर्यातों के कारण उपजी मंदी भी खत्म हो जायेगी।

विश्लेषकों का मत है कि देश में आ रहे विदेशी निवेश का 80 प्रतिशत अपनी पूंजी की घर वापसी है। नेता, अधिकारी तथा उद्यमी देश के रकम को पहले विदेश भेज देते हैं, फिर विदेशी निवेश के रूप में इसे वापस ले आते हैं, अतः हमें अपनी पूंजी के पलायन को रोकना चाहिए। मंदी का तीसरा प्रभाव तेल के गिरते मूल्यों के माध्यम से पड़ेगा। हमारे द्वारा खपत किये जा रहे तेल का लगभग 75 प्रतिशत हिस्सा आयातों से आ रहा है। तेल के गिरते मूल्य हमारे लिए लाभकारी होंगे। आयातों पर निर्भरता हमारी संप्रभुता के लिए खतरा है। तेल के गिरते मूल्यों के कारण देश में तेल की खपत बढ़ेगी, जो आयातों पर निर्भरता को बढ़ाएगी। इसलिए तेल पर टैक्स लगातार खपत को कम करना चाहिए। सस्ते तेल के जरिये देश की अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने के स्थान पर घरेलू खपत और निवेश को बढ़ा कर इस उभरते संकट का सामना करना चाहिए।

किसान की स्थिति में सुधार करने के लिए सरकार को डब्ल्यूटीओ यानी विश्व व्यापार संगठन

में मौलिक परिवर्तन के लिए दूसरे देशों को लामबन्द करना होगा। विकसित देश किसान को भारी सब्सिडी दे रहे हैं। उनकी लागत ज्यादा है, परन्तु वे सब्सिडी के बल पर अपने माल को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में सस्ता बेच रहे हैं। यह सस्ता माल भारत में भी प्रवेश कर रहा है। फलस्वरूप हमारा किसान पस्त है। डब्ल्यूटीओ सन्धि के बनने के समय विकसित देशों ने सब्सिडी हटाने पर आगे चर्चा करने का वायदा किया था। मोदी को चाहिए कि इस मुद्दे को उठाएँ और जब तक इस मामले का हल न निकले तब तक कृषि उत्पादों के सस्ते आयातों पर भारी आयात कर लगा दें दूसरे, ऊँची कीमत के वैल्यू एडेड कृषि उत्पादों के निर्यात पर सब्सिडी दें। फल, फूल, सब्जी और बासमती चावल के निर्यात को प्रोत्साहन दें जिससे हम विकसित देशों को उन्हीं के अस्त्र से पलटवार कर सकें। निर्यात बढ़ने से देश के कृषि उत्पादों के मूल्य बढ़ेंगे और किसान सुखी होगा। तीसरे फास्फेट और पोटाश का आयात करने के स्थान पर भूसे और गोबर का आयात करना चाहिए। इन प्राकृति उर्वरकों के सस्ते में उपलब्ध होने से किसान स्वयं ही रासायनिक खादों का इस्तेमाल कम करेगा। मोदी को किसान की मौलिक समस्याओं पर चर्चा करना चाहिए। देश के किसानों का उत्पादन लगभग 910 हजार करोड़ रुपये है। संप्रग सरकार ने स्वावलंबन के लिए 100 करोड़ का बजट आवंटित किया था। यह ऊँट के मुँह में जीरा था। मोदी को इस दिखावटी नीति को आगे बढ़ाने से रोकना होगा।

●

क्रमिक आश्रम-प्रवेश पेज 8 का शेष

50-51 वर्ष की आयु के पीछे गृहस्थाश्रम त्याग देने का यह नियम उन लोगों के लिए है जो वस्तु-ब्रह्मचारी रहते हैं। इनसे भिन्न जो रुद्र (36 वर्ष का) और आदित्य नामक (48 वर्ष का) अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करके गृहस्थाश्रम में जाएँगे, वे गृहस्थ मं 60-65 और 75-80 की आयु तक रह सकेंगे। यहाँ हमने पुरुषों की आश्रम-मर्यादा की ओर संकेत किया है; स्त्रियों के लिए उनकी शारीरिक रचना की दृष्टि से कुछ भिन्न नियम हैं।

सब लोगों को क्रमपूर्वक प्रत्येक आश्रम का पालन करते हुए संन्यासाश्रम तक जाना चाहिए। यह क्रमिक आश्रम-प्रवेश व्यक्ति के लिए अधिक सरल और सुरक्षित है। अति उत्कट वैराग्यवाले ब्राह्मण लोग ब्रह्मचर्य के पश्चात् अथवा गृहस्थ के पश्चात् सीधे भी संन्यास में जा सकते हैं।

वेदों में इन चारों आश्रमों का विधान है। वेद की शिक्षा के आधार पर मनु आदि शास्त्रकारों ने आश्रमों के नियमों और कर्त्तव्यों का बड़ा सुन्दर और विस्तृत वर्णन किया है। जिन्हें विस्तार से जानना हो, उन्हें वेद और मनु आदि अन्य आर्य-शास्त्रों के तद्विषयक स्थलों का स्वाध्याय स्वयं करना चाहिए। ऊपर की पंक्तियों में आश्रमों के सम्बन्ध में जो लिखा गया है, वह इन ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है उसी का संक्षिप्त आशय-मात्र है। इस सम्बन्ध में इससे अधिक लिखना यहाँ आवश्यक नहीं।

♦♦♦

www.thearyasamaj.org

ऋषि दयानन्द और राव कर्णसिंह

–आचार्य चतुरसेन शास्त्री

(ऋषि दयानन्द से जुड़े इस प्रसंग से ऋषि-जीवनी के पाठक परिचित हैं। हमें साहित्याकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री की लेखनी से लिखित यह विवरण उनकी रचनाओं में से उद्धृत ऋषि-जीवनी का यह प्रसंग प्रस्तुत है–सम्पादक)

मथुरा रेलवे स्टेशन से यमुना के विश्राम घाट तक जो सड़क जाती है, उसी मार्ग पर एक ओर एक छोटे से मकान में स्वामी विरजानन्द निवास करते थे। विराजनन्द सारस्वत ब्राह्मण थे। पाँच वर्ष की उम्र में चेचक के कारण नेत्रहीन हो गए थे। ग्यारह वर्ष की उम्र में माता-पिता विहीन हो गए। बड़े भाई ने अपने संरक्षण में रखा तो उन्होंने कष्ट दिया। परन्तु उन्होंने उनकी रुचि विद्याध्ययन की ओर थी। नेत्रहीन होते हुए भी वे यमुना में खड़े होकर गायत्री-जप किया करते थे। अस्तु, एक दिन अन्तःप्रेरणा पा, गृहत्याग (पंजाब प्रान्त में कर्त्तारपुर के समीप एक गाँव) वे कनखल पहुँचे और स्वामी पूर्णानन्द के शिष्य बन संस्कृत ग्रन्थों एवं व्याकरण का कठोर अध्ययन करने लगे। ज्ञान-सम्पदा से सम्पन्न होकर उन्होंने परमहंस वृत्ति धारण कर ली। तेज और विलक्षण बुद्धि के कारण वे शीघ्र ही प्रसिद्ध हो गए। कुछ समय तक अलवर नरेश विनयसिंह के शिक्षक रहे, परन्तु कुछ समय बाद अलवर नरेश से अप्रसन्न होकर वहाँ से चले आये। कुछ दिन मुरसान के राजा के पास रहे, बाद में मथुरा आए और उपर्युक्त गृह में अपना आवास बनाकर रहने लगे।

इसी गृह में उन्होंने पाठशाला खोली और विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे। अद्‌भुत स्मरणशक्ति के कारण उन्हें ग्रन्थ कण्ठस्थ थे। काशी के पण्डितों में उनके पाण्डित्य की ख्याति थी। वे स्पष्ट वक्ता, निष्कपट, सरल वृत्ति और ज्ञान में मग्न रहनेवाले, उच्च कोटि के दण्डी संन्यासी थे। अनार्ष ग्रन्थों से उन्हें घृणा थी। वे व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़ाते थे। इस तपस्वी संन्यासी ने इस गृह में एक ही आसन पर बैठकर सूक्ष्म आहार इत्यादि पर ही अपना सारा जीवन व्यतीत किया। इस समय उनकी उम्र का इक्यासीवाँ वर्ष चल रहा था।

सन् 1860 के कार्तिक मास के एक उषाकाल में मथुरा की सूनी गलियों में कौपीनधरी अवधूत द्रुत–चरण रखता हुआ ओठों से ओ३म् ध्वनि करता हुआ बढ़ा चला जा रहा था। उसने एक राहगीर से पूछा, "दण्डी गुरु का गृह कहाँ है?"

"वहाँ।" राहगीर ने समीप ही एक छोटे-से द्वार की ओर संकेत किया।

अवधूत "अग्निमीलेपुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं" इत्यादि वेदघोष उच्चारण कर द्वार के सम्मुख आ खड़ा हुआ। उसने उच्च स्वर में कहा :

"द्वार खोलो!"

"द्वार खोलो!"

तीन बार पुकार सुनकर भीतर से आवाज आयी, "कौन है?"

"हे गुरु, द्वार खोलो!"

"तुम कौन हो?"

"एक अभ्यागत, अतिथि, विद्यार्थी, ज्ञान-पिपासु। हे गुरु, द्वार खोलो!"

द्वार खुल गया। कौपीनधारी ने देखा–क्षीणकाय, कौपीनधारी प्रज्ञाचक्षु वेदर्षि विरजानन्द हाथ में दीप लिए द्वार पर खड़े हैं।

दो ज्ञान–ज्योतियाँ सामने-सामने प्रस्तुत थीं।

प्रज्ञाचक्षु ने प्रश्न किया, "कौन हो भाई?"

कौपीनधारी ने उत्तर दिया, "ज्ञान का प्यासा हूँ।"

"क्या नाम है?"

"दयानन्द।"

"कहाँ से आ रहे हो?"

"अज्ञान के अन्धकार में भटकता हुआ नर्मदा के अरण्य से।"

"क्या चाहते हो?"

"हे विद्या के सूर्य, मुझे ज्ञान का प्रकाश दीजिए, ज्ञान का अमृत पिलाइए। मुझ भटकते हुए को ज्ञान की सच्ची राह दिखाइए।"

"क्या तेरे लिए?"

"नहीं गुरुदेव, संसार के लिए, अज्ञान के अन्धकार में भटकते हुए मनुष्यों को ज्ञान के आलोक में ले आने के लिए।"

"तू क्या जनहित की भावना से प्रेरित हैं?

"मैं संन्यासी हूँ। मैंने आपा खो दिया है। मैं अन्धकार में भटकते हुए दीन-दु:खी मनुष्यों को प्रकाश में लाने को आतुर हूँ। यही मेरा व्रत है, यही मेरा ध्येय है।"

"आ पुत्र, भीतर आ! ज्ञान की ज्योति से जगत् को जगमग कर। ज्ञान का अमृत पीकर अमर हो! संसार के पीड़ित असंख्य नर-नारियों को अन्धकार से प्रकाश में ला।"

गुरु ने शिष्य को प्राप्त किया, शिष्य ने गुरु को प्राप्त किया। गुरु ने अपना ज्ञान दिया, शिष्य ने उसे आत्मा में ग्रहण किया। आगे चलकर इन्हीं दयानन्द सरस्वती ने अपनी शिक्षा से भारत के अन्धकार को दूर किया। कोटि-कोटि जन के अन्धविश्वासों को चीरकर ज्ञान और विवेक का प्रकाश फैलाया।

ढाई वर्ष गुरु-चरणों में रह ज्ञान की झोली भरकर दयानन्द सरस्वती ने सबसे पहले आगरा में अपना उपदेश दिया। तब उनकी आयु उनतालीस वर्ष थी। तब से लेकर मृत्यु-पर्यन्त वे भारत में घूम-घूमकर वेदों और आर्यधर्म की ध्वजा फहराते रहे। उन्होंने बड़े-बड़े दिग्गज पण्डितों से शास्त्रार्थ कर उनके भ्रम का निवारण किया। उन्हें कोई परास्त न कर सका।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उसनठ वर्ष की आयु पायी। अपनी मृत्यु से बीस वर्ष पहले प्रौढ़ावस्था में उन्होंने उत्तरप्रदेश के गंगा के खादर में दो-तीन वर्षों तक परिभ्रमण किया। इस अंचल में अनूपशहर, रामघाट और कर्णवास प्रमुख स्थान थे। यहाँ पर ठाकुरों का बाहुल्य था। दयानन्द सरस्वती का जन्म सन् 1824 में हुआ और मृत्यु सन् 1883

में। 1857 के गदर बाद भारत की राज्य-व्यवस्था अंग्रेजी राज्य के आरम्भिक काल की राज्य व्यवस्था थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, राज्य-व्यवस्था अधिक व्यापक और नियमित होती गयी। परन्तु स्वामीजी के खादर परिभ्रमण के काल में ठाकुरों का सामाजिक जीवन 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' पर आधारित था। उनमें शौर्य तो था, परन्तु विवेक और सुविचार की भावना कम थी। स्वामीजी के व्याख्यानों और दर्शनों से बहुतों ने अपना जीवन सुधारा। इसलिए उस अंचल में रहने वाले ठाकुरों में जो सामाजिक सुधार हुआ उसका श्रेय स्वामी दयानन्द को है।

स्वामी दयानन्द का शरीर सुगठित, सुडौल और सुदृश्य था। कंधे और पार्श्व परिपुष्ट थे। उनकी दोनों भुजाएँ हाथी की सूंड की भाँति लम्बी थीं और घुटनों को स्पर्श करती थीं। नाखून अरुण वर्ण थे। वक्ष विस्तृत और पुष्ट था। जाँघें स्तम्भ की भाँति सुगठित थीं। विकसित और विशाल नेत्र कृपाभाव बरसाते रहते थे। उनकी दृष्टि में आकर्षण और सम्मोहक था। नाक उन्नत और अत्यन्त सुन्दर थीं, दोनों भौंहें सुन्दर थीं और उनके ऊपर अर्द्धचन्द्राकार भाल और भी सुन्दर दीखता था। वे लम्बे और हृष्ट-पुष्ट थे। जब वे चलते थे तो ऐसा प्रतीत होता था कि एक तेजवान मूर्ति अपना प्रकाश बिखेरती आ रही है। ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या और कठोर जीवन से ही उन्हें ऐसा दीप्त और वज्र शरीर प्राप्त हुआ था। उन्हें अनेक बार विष दिया गया, किन्तु उनके योगबल ने उनके शरीर को सुरक्षित बनाए रखा।

आरम्भ में अड़तालीस वर्ष की आयु तक वे प्रत्येक ऋतु में केवल एक कौपीन (कटिबन्ध) धारण करते थे, शेष सम्पूर्ण शरीर नंगा ही रहता था। परन्तु सन् 1872 में जब वे कलकत्ता गए, तब ब्रह्मसमाज के नेता केशवचन्द्र सेन के आग्रह पर उन्होंने वस्त्र धारण करना स्वीकार किया। तब से वे सिर पर एक रेशमी पीताम्बर, नीचे एक रेशमी धोती और ऊपर एक ऊनी या रेशमी चोगा पहनने लगे थे। इस परिधान में उनकी तेजोमय, उज्ज्वल, गम्भीर और सुन्दर आकृति को देखकर अपूर्व श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का प्रादुर्भाव मन में होता था। वार्त्तालाप, व्यवहार और उपदेश करते समय वह इतने समदर्शी थे कि प्रत्येक व्यक्ति यही समझता कि स्वामीजी उसी को सम्बोधित कर रहे हैं—उनका अधिक अनुग्रह, अधिक कृपा और अधिक प्रीति उसी पर है। वे ब्राह्म-मुहूर्त्त में ही ध्यानारूढ़ हो अचल समाधि लगाते थे। यह समाधि-अवस्था एक-दो घण्टे तक रहती थी। यही उनकी मूल योग-सिद्धि थी। इसी को साधकर पुरुष जितेन्द्रिय होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह उसे स्पर्श नहीं कर सकते। अवधूत जीवन में वह एक दिन में चालीस कोस तक की मंजिल तय कर लेते थे। एक बार गंगा स्रोत से चलकर गंगा के किनारे-किनारे गंगा-सागर संगम तक की यात्रा की। गंगोत्तरी से रामेश्वरम तक की पद-यात्रा भी उन्होंने की थी। ग्रीष्म के भीषण उत्ताप से तप्त रेत पर दोपहरी काटी थी। पौष-माघ की रात्रियों के पाले नग्न और निराहार रहकर सहन किए थे।

इस जितेन्द्रिय महापुरुष ने वेदों का प्रचार कर अनेक अन्धविश्वासों को दूर किया और साधारण जनता के हृदय में ज्ञान का प्रकाश फैलाया।

एक बार स्वामी दयानन्द बेलौन जाते हुए कर्णवास आए। कर्णवास ठाकुरों का गढ़ था। प्रातःकाल था, वे अपने आसन पर बैठे लोगों को वेदों का ज्ञान करा रहे थे। एक ब्राह्मण पण्डित ने आकर कहा, "स्वामीजी दण्डवत्।"

स्वामीजी ने हँसकर कहा, "दण्डवत् तुम्हीं होओ।"

उसने फिर पूछा, "आपने देह पर गंगा की मिट्टी क्यों लगाई है?"

"इससे मच्छर-मक्खी नहीं काटते।"

"सुख क्या है?"

"सुख दो प्रकार का होता है। एक विद्याजन्य और दूसरा अविद्याजन्य। विद्याजन्य सुख ही सच्चा सुख है। यह सुख अज्ञान की निवृत्ति और ज्ञान की प्राप्ति से होता है। अविद्याजन्य सुख तो पशु आदि जीवों में पाया जाता है। जीव एकदेशी होने से अल्पज्ञ है, इसीलिए अज्ञानी हो जाता है। परमात्मा देश-काल से ऊपर और सर्वज्ञ है, उनमें अज्ञान का लेशमात्र नहीं है। वह परमानन्दमय, आनन्दधन, परब्रह्म है।"

उसने और भी कुछ प्रश्न पूछे और झुककर स्वामीजी के चरणों मे मस्तक टेक दिया।

स्वामीजी की इस विजय से वहाँ उपस्थित ठाकुरों को बहुत आश्चर्य हुआ, क्योंकि यह ब्राह्मण दूर-दूर तक परम विद्वान् समझा जाता था और वह सबका गुरु था। ठाकुरों ने कहा, "महाराज हमें भी ज्ञान दीजिए।"

स्वामीजी ने उत्तर दिया, "आप लोग वीर पुरुष हैं, क्षत्रिय धर्म का पालन कीजिए। प्रजापालन और प्रजा की रक्षा कीजिए। आत्मा की शन्ति के लिए गायत्री पाठ कीजिए। यज्ञोपवीत धारण कीजिए।"

ठाकुरों में उत्साह छा गया। भारी संख्या में गायत्री-मन्त्र ग्रहण करने और यज्ञोपवीत धारण करने का आयोजन किया गया।।

स्वामीजी ने कहा, "आठ वर्ष से अठारह वर्ष की अवस्था तक के लिए कई प्रायश्चित नहीं है, बड़ी आयुवालों को यज्ञोपवीत लेने से पूर्व प्रायश्चित करना होगा।"

अनूपशहर, दानापुर, अहमदगढ़, रामघाट, जहाँगीराबाद और अलीगढ़ से हजारों ठाकुर यज्ञोपवीत धारण करने के लिए कर्णवास में एकत्र हो गए। कर्णवास के पण्डित गायत्री-जप का अनुष्ठान कराने लगे। पन्द्रह दिन तक अनुष्ठान चलता रहा। सोलहवें दिन स्वामीजी के कुटी-द्वार पर वृहद् यज्ञ हुआ। उसमें होता, उद्‌गाता और ऋत्विज कर्णवास के ही पण्डित थे। यज्ञ के उपरान्त स्वामीजी ने अपने हाथ से लोगों को यज्ञोपवीत धारण कराए और गायत्री का उपदेश दिया।

कर्णवास के ठाकुरों की भारी प्रतिष्ठा थी, उनका प्रभाव भी बहुत था। उनके यज्ञोपवीत धारण करने की बात आसपास के गाँवों में शीघ्र फैल गई। लोगों में नवजीवन के उत्साह की एक लहर फैल गई। कोसों दूर से चलकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य

टोलियाँ बनाकर कर्णवास आकर स्वामीजी के हाथों यज्ञोपवीत धारण करने लगे। पर्व की-सी धूम मच गई। चालीस-चालीस पचास-पचास ठाकुर गंगा-स्नान कर पंक्ति बाँध गंगा के किनारे खड़े हो जाते और स्वामीजी उन्हें यज्ञोपवीत देकर गायत्री का उपदेश देते। घरों में, गलियों में, हाट-बाजारों में, घाटों पर नर-नारी इस अलौकिक संन्यासी के यज्ञोपवीत-दान की चर्चा करते थे।

कर्णवास में 90 वर्ष की एक वृद्धा बाल-विधवा हंसा ठाकुरानी रहा करती थीं। वह छह गांवों की स्वामिनी थी। परन्तु बहुत नियम-व्रत से रहती थी। जब उसने सुना कि उसके देवर-पुत्रों ने भी यज्ञोपवीत धारण कर लिया है, तब उसने भी अपने देवर-पुत्र गोपाल सिंह ठाकुर से उस देव-संन्यासी के दर्शन की इच्छा प्रकट की।

''गोपालसिंह ठाकुर से हंसा ठकुरानी का समाचार सुन स्वामीजी ने उसे आने की आज्ञा दे दी।''

वृद्धा ने स्वामीजी के सम्मुख पहुँचकर गहरी श्रद्धा से भूमि पर माथा टेककर उनके चरणों में प्रणाम किया।

उसने कहा, ''मैं भाग्यहीना हूँ, मेरा भी कल्याण कीजिए।''

स्वामीजी ने उसे आदरपूर्वक उठाकर कहा, ''ठाकुर-पूजा छोड़ दो गायत्री का पाठ करो। आपका कल्याण होगा।''

''तब मुझे गायत्री की दीक्षा मिले।''

''अवश्य'', कहकर स्वामीजी ने उसे गायत्री का मन्त्र दिया और उसका मर्म समझाया।

स्वामीजी द्वारा गायत्री मन्त्र लेने वाली वह प्रथम महिला थी।

बरौली के ठाकुर राव कर्णसिंह वैष्णव सम्प्रदायके गुरु श्री रंगाचार्य के शिष्य बनकर पक्के वैष्णव बन गए थे। अपने नौकरों को उन्होंने माथे पर वैष्णवी तिलक लगाने और गले में वैष्णवी कण्ठी पहनने की कठोर आज्ञा दे रखी थी। कभी-कभी किसी को पकड़कर चक्रांकित भी कर दिया करते थे। एक दिन उन्होंने अपने पुरोहित को पकड़कर जबरदस्ती चक्रांकित कर दिया । वह भागकर पीड़ा से रोता-कलपता स्वामीजी के पास जाकर अपना चक्रांकित घाव दिखाने लगा। स्वामीजी ने उसे धीरज बंधाया और उसके घाव पर औषध लगाकर अपनी कुटी में रख लिया। कुछ दिन बाद घाव अच्छा हो गया।

राव कर्णसिंह को जब यह बात ज्ञात हुई तो वह स्वामीजी के प्रति क्रोधित हो उठे। इसी समय ज्येष्ठ की अमावस्या का गंगा-स्नान भी पड़ा। वे तुरन्त कर्णवास चल पड़े। कर्णवास उनकी ससुराल भी थी, परन्तु वे अपना डेरा स्वामीजी के डेरे के पास लगाकर वहीं ठहरे। रात को उन्होंने रास किया। स्वामीजी को बुलवाया, परन्तु उन्होंने रास करना निन्दनीय कार्य बताकर उसमें सम्मिलित होने से इनकार कर दिया।

अगले दिन सन्ध्या समय राव कर्णसिंह अपने पण्डितों और नौकरों को साथ लेकर स्वामीजी की कुटी पर आए। उस समय वे अपने भक्तों को

उपदेश कर रहे थे। रावसाहब को आते देख उन्होंने कहा, "आइए बैठिए।"

रावसाहब ने क्रोध में भरकर पूछा, "कहाँ बैठें?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया, "जहाँ आपकी इच्छा हो वहाँ बैठ जाइए।"

"जहाँ आप बैठे हैं, वहीं बैठेंगे।"

स्वामी जी ने अपनी शीतलपाटी फैलाकर कहा, "आइए, यहीं बैठिए।"

राव धमककर उस पर बैठ गए और पूछा, "आप हमारे यहाँ रास में क्यों नहीं आए?संन्यासी होकर ऐसा करना बुरा है। हमारे स्थान पर जब रासलीला होती है, तब सभी पण्डित, संन्यासी, विद्वान् सम्मिलित होते हैं।"

स्वामीजी ने हँसकर कहा, "आपके सामने पूज्य पुरुषों का रूप धारण कर मलिन मनुष्य आते हैं, नाचते हैं, रास करते हैं और आप बैठे-बैठे देखा करते हैं। आपको लज्जा नहीं आती। साधारण मनुष्य भी अपने माता-पिता, परिजनों का रूप धरकर उनका स्वांग भरना सहन नहीं कर सकता, फिर आप तो कुलीन हैं, क्षत्रिय हैं।"

"हमने सुना है कि आप अवतारों और गंगा की निन्दा करते हैं। पर स्मरण रखें कि मेरे सामने निन्दा की तो मैं बुरा बरताव करूँगा।"

"मैं निन्दा नहीं करता हूँ। जो वस्तु जैसी है, उसे वैसा ही बताता हूँ। गंगा भी जैसी और जितनी है, उसे वैसी और उतनी बताता हूँ। सत्य कहने में निर्भय हूँ।"

"तो फिर गंगा कितनी है?"

स्वामीजी अपना कमण्डल उठाकर बोले, "मेरे लिए तो इतना जल यथेष्ट है, सो यह इतनी ही है।"

"गंगा गंगेति.........आदि श्लोकों में नाम-कीर्तन, दर्शन, स्पर्श से पापनाश कहा है।"

"ये श्लोक साधारण लोगों के कपोल-कल्पित हैं। माहात्म्य सब गप्प हैं। पापनाश और मोक्षप्राप्ति वेदानुकूल आचरण से होगी, अन्यथा नहीं।"

फिर राव के मस्तक की ओर देखकर कहा, "आपके मस्तक पर यह तिलक-रेखा क्या है?"

"यह श्री है जो इस श्री को धारण नहीं करता, वह चाण्डाल है।"

"आप कब से वैष्णव हुए हैं?"

"कुछ वर्षों से।"

"क्या आपके पिता भी वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे?"

"नहीं वे नहीं हुए।"

"तब तो आपके कथनानुसार आपके पिता और पितामह भी चाण्डाल सिद्ध हुए।

यह सुनते ही राव को क्रोध आ गया और वे तलवार पर हाथ रखकर बोले, "मुँह संभालकर बोलो।"

रावसाहब के साथी लोग भी आक्रमण करने के लिए सन्नद्ध हो गए।

स्वामीजी ने शान्ति से कहा, "हमने जो कहा है, सत्य कहा है।"

राव की आँखों में खून उतर आया, वे स्वामीजी को गालियाँ देने लगे।

स्वामीजी ने हँसते हुए कहा, "राव महाशय, उत्तम होगा कि आप वृन्दावन से अपने गुरु रंगाचार्य जी को बुलाकर हमसे शास्त्रार्थ करायें। जो हारे वह दूसरे के सिद्धान्त को स्वीकार करें।"

राव ने आँखें तरेरकर कहा, "आप मेरे गुरु श्री रंगाचार्य से क्या शास्त्रार्थ कर सकते हैं। आप जैसे उनकी जूतियाँ साफ करते हैं।" यह कहकर उन्होंने मुट्ठी में तलवार कस ली।

स्वामीजी ने कहा, "आपका हाथ बार-बार तलवार पर क्यों जाता है?आप शास्त्रार्थ करने के लिए रंगाचार्यजी को निमन्त्रण भेजा दीजिये, तलवार से भिड़ना हो तो जोधपुर से जा भिड़िए।"

राव महाशय क्रोधान्वित हो तलवार खींच अपशब्द कहते हुए स्वामीजी की ओर लपके। स्वामीजी ने 'अरे धूर्त' कहकर उन्हें हाथ से पीछे धकेल दिया। राव लुढ़क गए परन्तु तुरन्त उठकर और भी वेग तलवार का वार करने के लिए आगे बढ़े।

वे तलवार चलाना ही चाहते थे कि स्वामजी ने झपटककर तलवार उनके हाथ से छीन ली और जमीन पर टेक देकर, मोड़कर उसके दो टुकड़े कर डाले। उन्होंने राव का हाथ पकड़कर कहा, "क्या आप यह चाहते हैं कि मैं भी आततायी पर प्रहार कर बदला लूँ?"

राव का मुँह पीला पड़ गया। उन्हें मूर्छा आने लगी।

स्वामीजी ने उनका उपचार करते हुए कहा, "मैं संन्यासी हूँ, आपका अनिष्ट नहीं कर सकता। जाइए, ईश्वर आपको सुमति प्रदान करे।"

उन्होंने तलवार के दोनों टुकड़े दूर फेंककर राव को विदा किया।

अभी तक सभी आगत विस्मय और भय से यह देख रहे थे। राव के जाने पर एक भक्त ने कहा, "महाराज, इन पर अभियोग चलाया जाए।"

स्वामीजी ने घृणा से इसे अमान्य करते हुए कहा–

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्॥

उपर्युक्त घटना के लगभग ढाई वर्ष बाद, एक बार फिर, स्वामीजी और राव कर्णसिंह का शक्ति-परीक्षण हुआ। शरद् पूर्णिमा पर गंगा-स्नान करने राव कर्णवास जाकर ठहरे हुए थे, स्वामीजी भी फर्रुखाबाद, अनूप शहर घूमते हुए वहाँ जा पहुँचे और अपनी कुटी पर डेरा किया।

इस बार राव का डेरा स्वामीजी की कुटी से डेढ़ सौ कदम दूर था। राव के साथ नाच-रंग का सामान और वेश्याएँ भी थीं। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि स्वामीजी भी वहाँ पहुँच गए हैं, तब उन्होंने वैरागियों को स्वामीजी पर आक्रमण करने के लिए तैयार किया। कर्णवास में 'मौजी बाबा' नामक एक नेत्रहीन ब्राह्मण सन्त रहते थे। वे शिशुवत् दिगम्बर विचरते रहते थे। जब गंगा-स्नान करते तो स्त्रियाँ भी उन्हें मलमलकर नहलाने लगती थीं और वे 'छोड़ो माँ' कहते हुए पानी में गिर पड़ते थे। उनकी वासनाएँ शान्त थीं। वह प्रायः मौन रहते थे, परन्तु

www.thearyasamaj.org

स्वामीजी के भक्त थे और उनमें घण्टों एकान्त वार्तालाप किया करते थे। उन्हें जब ज्ञात हुआ कि राव ने स्वामीजी को मारने के लिए वैरागियों को तैयार किया है तो वे तत्काल उनके डेरे पर गए। वैरागी उनके भक्त थे।'' 'मौजी बाबा' ने उन्हें समझाया तो वे मान गए और फिर कभी राव के कहने में नहीं आए।

राव ने वैरागियों से निराश होकर एक रात अपने तीन नौकरों को नंगी तलवारें देकर कहा कि स्वामीजी को काटकर गंगा में बहा आओ।

रात्रि के सन्नाटे में तीनों व्यक्ति स्वामीजी की कुटी की ओर चले। स्वामीजी उस समय तुरीयावस्था में ध्यानारूढ़ थे। ज्यों ही उनकी दृष्टि समाधिस्थ स्वामीजी पर पड़ी, उनके हाथ काँपने लगे, आँखों के आगे अंधेरा छा गया। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि वे गहन पर्वतीय वन में भटक गए हैं और मार्ग नहीं सूझ रहा है। उनसे एक पग भी आगे नहीं बढ़ा गया। अतः वे भयभीत होकर वापस लौट गए और राव के पास पहुँचे। राव ने उन्हें डाँट-डपटकर फिर भेजा। वे फिर आएँ। इस बार स्वामीजी की समाधि टूट चुकी थी। परन्तु तीनों में से एक भी आगे न बढ़ सका। वे लौट गए। इस बार राव ने अपने नौकरों को बहुत झिड़का और गालियाँ देकर फिर स्वामीजी की हत्या करने भेजा। गिरते-पड़ते वे फिर कुटी पर आए। उनके वहाँ पर पहुँचते ही स्वामीजी ने प्रबल हुंकार की और भूमि पर वेग से पदाघात किया। हुँकार और पदाघात की वज्रध्वनि सुनकर वे तीनों भूमि पर गिर पड़े और तलवारें हाथ से छूटकर गिर पड़ीं। स्वामीजी ने तलवारें दूर फेंक दीं। बड़ी कठिनाई से वे तीनों सम्भलकर उठे और भाग खड़े हुए।

प्रातः होते ही रात की घटना का समाचार नगर में फैल गया। ठाकुरों ने आकर राव को बुरा-भला कहा और भर्त्सना की। उस समय राजघाट पर पंजाबी सेना के कुछ सैनिक स्वामीजी की कुटी पर पहुँचे और कहा ''आज्ञा दीजिए कि राव को दण्ड दें। आप जैसे सन्त पर उसने आक्रमण कराकर हमारा पंजाबी खून खौला दिया है।''

परन्तु स्वामीजी ने उन्हें शान्त किया, उपदेश दिया और समझा-बुझाकर लौटा दिया।

राव की ससुरालवालों ने आकर राव को समझाया कि कर्णवास के सब ठाकुर आपके विरुद्ध हो गए हैं, अतः अब यहाँ से चले जाना ही अच्छा है।

राव ने पंजाबी सैनिकों के आगमन की बात भी सुनी। वह भयभीत हो उठे थे, उन्होंने तुरन्त अपना डेरा उठा दिया और चल दिए। अपने गाँव बरौली पहुँचकर वे बीमार हो गए। रोग-शय्या पर पड़े-पड़े वे प्रलाप करने लगे। ऐसी ही अवस्था में उन्हें सूचना मिली कि इलाहाबाद कोर्ट में उनका पचास हजार रुपये का केस चल रहा था, वे उसमें हार गए हैं।

अन्त पश्चात्ताप और दुःख के भँवर में पड़कर उनका दुःखद प्राणांत हुआ।

◆◆◆

राष्ट्रगान और धर्म

–क्षितीश वेदालंकार

उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रगान के सम्बन्ध में जो निर्णय दिया है, उसने सारे राष्ट्र को चौंका दिया है। उच्चतम न्यायालय का यह कहना है कि यदि किसी की धार्मिक मान्यता के विरुद्ध हो तो "जन-गण-मन" का राष्ट्रगान गाने के लिए किसी को बाध्य नहीं किया जा सकता, क्योंकि संविधान ने देश के प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति की ओर धार्मिक मान्यताओं की स्वतन्त्रता प्रदान की है। केरल के सुदर्शन संस्कृत विद्यालय के तीन विद्यार्थियों ने कहा कि हम बाईबिल में वर्णित यहोवा और ईसामसीह के सिवाय और किसी को नहीं मानते और हम उस दिन की प्रतीक्षा में है जिस दिन सारे संसार में यहोवा का राज्य स्थापित होगा, इसलिए न हम किसी राष्ट्र में विश्वास करते हैं, न राष्ट्रभक्ति की शपथ लेते हैं, न किसी ध्वज को अपना ध्वज मानते हैं और न किसी राष्ट्रगीत को राष्ट्रगीत स्वीकार करती हैं। केरल के उच्च न्यायालय ने उक्त तीनों विद्यार्थियों को राष्ट्रगीत गाने से इन्कार करने के कारण अपराधी पाया था। उच्च न्यायालय का कहना था कि धार्मिक आजादी के नाम पर राष्ट्रगीत न गाने की छूट नहीं दी जा सकती । परन्तु उच्चतम न्यायालय ने इस निर्णय को यह कहकर पलट दिया कि धार्मिक आजादी हमारे संविधान का मूलभूत सिद्धान्त है इसलिए किसी धार्मिक संगठन की भावनाओं का विचार करते हुए उन पर राष्ट्रगीत गाने की अनिवार्यता नहीं थोपी जा सकती।

असल में सारा विवाद धर्म और सम्प्रदाय के भेद को न समझने के कारण है। इसी अविवेक के कारण 'सेक्यूलर' शब्द के लिए धर्म-निरपेक्ष शब्द का चलन चल पड़ा। 'सैक्यूलर' शब्द का जन्म पश्चिम में थियोक्रेटिक स्टेट (धार्मिक राज्य) के मुकाबले में हुआ। हमारे लिए और पश्चिम की दुनिया के लिए धर्म का अलग-अलग मतलब है। उनके यहाँ धर्म जैसी कोई चीज नहीं है, केवल सम्प्रदाय है। वे उसी को धर्म समझते हैं और इसीलिए पश्चिम में धर्म कभी अन्तर्मुखी न होकर हमेशा बहिर्मुखी रहा है। पश्चिम में धार्मिक स्वतन्त्रता और धर्म-निरपेक्षता दोनों का अर्थ हमारे यहाँ से भिन्न है।

जब यूरोप के देशों में मध्यकालीन चर्च ने राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने का भी प्रयत्न किया, तब चर्च से अलग एक राजनैतिक संस्था के रूप में 'सैक्यूलर स्टेट' का विचार पैदा हुआ जिसका अभिप्राय केवल इतना था कि राज्य केवल लोगों के लौकिक जीवन की व्यवस्था करेगा, क्योंकि धार्मिक जीवन की व्यवस्था का अधिकार तो चर्च का रहेगा ही। जिन कारणों से पश्चिम में चर्च को राज्य के दायरे से अलग करने की कोशिश की गई, वैसा भारत में कभी नहीं हुआ। हमारे यहाँ धर्म और सम्प्रदाय में हमेशा भेद किया गया और कभी किसी संस्था ने किसी भी सम्प्रदाय के विधि-विधान को पूरे समाज पर लादने की कोशिश नहीं की। यूरोपीय समाज की प्रवृत्ति की प्रवृत्ति सर्वसत्तावादी रही है। इसलिए वहाँ चर्च या राज्य दोनों के मार्फत धार्मिक या राजनैतिक विधि-विधान सब पर लादने की

कोशिश की जाती रही है और इसीलिए वहाँ चर्च और राज्य में सदा संघर्ष चलता रहा है।

धर्म और सम्प्रदाय में भूल-भूत भेद है। धर्म का आधार नैतिकता होती है और सम्प्रदाय का आधार किसी व्यक्ति विशेष में निष्ठा और उसके द्वारा बताया गया कर्मकाण्ड। पश्चिम की दुनिया ने धर्म और सम्प्रदाय को पर्यायवादी मानकर एक घपला पैदा कर दिया जो भारत के इतिहास में कभी नहीं रहा। भारत ने अपनी मूल वैदिक मान्यताओं के अनुसार सारी मानव जाति को एक इकाई मानकर नैतिक दृष्टि से मानव जाति को धारण करने वाले कुछ नियमों का प्रतिपादन किया और उसी को धर्म की संज्ञा दी। उस धर्म को वैदिक धर्म कहो या मानव धर्म कहो, दोनों का अर्थ एक ही है। वह सार्वकालिक भी और सार्वदेशिक भी। मनुष्य जाति के जन्म से लेकर आज तक उसकी नैतिक मान्यताओं में कभी कोई अन्तर नहीं आया। यदि सत्य बोलना और सत्याचरण करना सृष्टि के आदि में धर्म था तो आज भी वह धर्म है। मानव जाति के नैतिक आधारों को बताने वाले उस धर्म की परिभाषा करनी हो तो योग-दर्शन के यम और नियम के रूप में की जा सकती है। यम है—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। नियम हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। यहाँ पर यम-नियमों की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। विज्ञ लोग स्वयं जानते हैं। इन यम-नियमों के साथ ही मनुस्मृति के अनुसार, जिसे हम धर्मशास्त्र मानते हैं धर्म के ये दस लक्षण हैं:

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

—मनु. 6/92

योग-दर्शन ने यम और नियम के रूप में जिन दस बातों का परिगणन किया है, लगभग वही दस बातें मनुस्मृति के इस दश लक्षण वाले धर्म में कही गई हैं। यही सार्वत्रिक धर्म है और यह धर्म ऐसा है जिसका विरोध कोई भी सम्प्रदाय नहीं कर सकता। और तो और, हम तो यहाँ तक कहेंगे कि जितने अवैदिक मत-मतान्तर हैं वे भी धर्म के इन दस लक्षणों को अस्वीकार नहीं कर सकते, क्योंकि ये नैतिकता पर आधारित है और वह नैतिकता मनुष्य-जाति के हृदय और बुद्धि के माध्यम से संसार के हर देश और हर वर्ग के द्वारा स्वीकृत है। किसी भी सम्प्रदाय के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता।

वास्तव में अगर सब सम्प्रदायों में से उनके पैगम्बरों को निकाल दिया जाय तो उनके भेद की सबसे बड़ी दीवार चूर-चूर हो जायेगी और वे नैतिकता की समान बातों पर सहमत हो जायेंगे। धर्म मनुष्य जाति को जोड़ता है और सम्प्रदाय मानव को मानव से तोड़ता है। सम्प्रदायवादी केवल अपने सम्प्रदाय को महत्व देता है, वह अपने से भिन्न सम्प्रदाय वालों को काफिर और 'वाजिबुल कत्ल' (बध के योग्य) तक कहने में संकोच नहीं करता। सम्प्रदाय ही मानव जाति के दुश्मन है और जब तक इन सम्प्रदायों का अस्तित्व रहेगा। तब तक वे मनुष्य जाति को कभी एक नहीं होने देंगे और न कभी शान्ति से जीने देंगे।

पश्चिम की दुनिया ने धर्म और सम्प्रदाय को गड्ड-मड्ड करके सम्प्रदायों के विरुद्ध उमड़ने बुद्धिवादियों और वैज्ञानिकों के आक्रोश को धर्म के विरुद्ध मोड़ दिया और जो गालियाँ सम्प्रदाय को दी जानी चाहिए थीं, वे धर्म को दी जाने लगीं, जबकि

धर्म सर्वथा निर्दोष था। इसी दोहरी मानसिकता के कारण पश्चिम के सामाजिक जीवन में और वैयक्तिक जीवन में अन्तर्विरोध पैदा हुआ, क्योंकि उनका धर्म बुद्धि विरुद्ध होने के कारण विज्ञान की रोशनी के सामने नहीं टिक सका। इसलिए उन्होंने धर्म को ही सब अनर्थों की जड़ मानना प्रारम्भ कर दिया और तभी धर्म को अफीम कहने वाली समाजवादी विचारधारा का प्रचार हुआ। यह पश्चिम की दुनिया में ही सम्भव है कि कोइ ईसाई युवक यह कहे कि जब मैं गिरजाघर में जाता हूँ तब तो पृथ्वी नहीं घूमती सूरज घूमता है, पर जब मैं स्कूल में जाता हूँ या प्रयोगशाला में जाता हूँ तब सूरज नहीं घूमता, पृथ्वी घूमती है। इस प्रकार विज्ञान और बुद्धि के विरुद्ध बातें न केवल ईसाइयत या इस्लाम में बलिक संसार के तथाकथित सभी मुख्य सम्प्रदायों मे विद्यमान हैं। इसीलिए वे अपनी धार्मिक मान्यताओं में तर्क को दखल नहीं देते। एक तरफ ये सम्प्रदाय है जो केवल ईमान पर बल देते हैं और तर्क से घबराते हैं और दूसरी तरफ वैदिक धर्म है जो यह घोषणा करके चलता है–

यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्म वेद नेतरः।

अर्थात् जो तर्क से अनुसंधान करता है वही धर्म को पहचान सकता है। जिस प्रकार प्रकाश के सामने अन्धकार नहीं टिक सकता, उसी प्रकार व्यक्तिवाद पर आधारित और नाना अन्धविश्वासों को प्रश्रय देने वाले विभिन्न मत-मतान्तर भी तर्क की कसौटी पर खरे नहीं उतर सकतें

और क्योंकि वे तर्क की कसौटी पर खरे नहीं उतर सकते, इसीलिए धर्म के नाम से अपनी बुद्धि-विरुद्ध बातों को राष्ट्र से ऊपर मानने की बात कहते हैं। जिसका धर्म अपने से भिन्न सम्प्रदायों को बर्दाशत नहीं कर सकता, वे राष्ट्र को भी बर्दाश्त नहीं कर सकते और इसीलिए अपने तथाकथित धर्म को, अर्थात् सम्प्रदाय को, राष्ट्र से बढ़कर महत्व देते हैं। एक राष्ट्र का अर्थ यह है कि अनेक सम्प्रदायों के लोग भले ही उस राष्ट्र में रहते हों, परन्तु वे अपने सम्प्रदाय से ऊपर राष्ट्र को महत्व देंगे। जब से राष्ट्र के बजाय सम्प्रदाय को महत्व देने की बात चली, तभी से अल्पसंख्यकों का अनुचित महत्व भी बढ़ा है। उच्चतम न्यायालय ने धार्मिक स्वतन्त्रता के नाम से साम्प्रदायिक स्वतन्त्रता को मान्यता देकर पश्चिम की दृष्टि से भले ही धार्मिक आजादी की रक्षा की हो, लेकिन भारतीय संस्कृति की दृष्टि से वह सरासर अधार्मिक है। राष्ट्र के जो भी प्रतीक हों, उनका सम्मान करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य होता है और यदि कोई नागरिक किसी राष्ट्र के प्रतीक का उचित सम्मान नहीं करता तो उस व्यक्ति को राष्ट्र का नागरिक कहलाने का अधिकार नहीं है। किसी एक राष्ट्र में दो संविधान नहीं चल सकते। भारत में भी या तो भारतीय संविधान चलेगा या यहोवा का, ईसा का, मूसा का या मोहम्मद का।

यहीं फिर प्रश्न पैदा होगा कि व्यक्ति बड़ा है या राष्ट्र और यदि किसी राष्ट्र का कोई नागरिक किसी व्यक्ति-विशेष को राष्ट्र से बड़ा मानता है तो राष्ट्र को उसकी नागरिकता के बारे में सोचना होगा। जो व्यक्ति राष्ट्र के प्रतीकों को उचित सम्मान नही दे सकता, राष्ट्र के लिए उसे अपनी नागरिकता का अधिकार देने का क्या औचित्य है?

♦♦♦

जीवन जीने की पुरातन कला–प्राकृतिक चिकित्सा अथवा प्राकृतिक जीवन पद्धति

डॉ॰ गंगा शरण आर्य, नई दिल्ली

प्राकृतिक जीवन सच पूछिए, तो इस भारतवर्ष की परम्परा है। भारतीय ऋषियों ने तो इसके मूल सिद्धान्तों को हमारे नित्य के जीवन में, धार्मिक कृत्यों में शामिल कर रखा है आदि सृष्टि का इतिहास देखने से पता चलता है कि आदि युग में आजकल की तरह भाँति-भाँति की औषधियाँ नहीं थी, न ही डाक्टर और न अस्पताल फिर भी आदमी आज की अपेक्षा अधिक सुख से जीवन जीते थे, लम्बी-लम्बी उम्र पाते थे। आज की तरह उस समय लोग असमय में ही निर्बल नहीं होते थे। उनकी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक तीनों शक्तियाँ मृत्युपर्यन्त बलवती रहती थी, और उस जमाने के लोग आजकल के लोगों की भाँति न तो जल्द बूढ़े होते थे और न अल्पायु वाले ही होते थे। यह इसलिए कि सृष्टि के आदि में रहने वाले लोग सच्चे अर्थों में प्रकृति के उपासक होते थे उनका संबंध प्रकृति से अटूट और सनातन होता था। प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली उतनी ही प्राचीन है जितनी स्वयं प्रकृति और इसके आधारभूत तत्व। वेदों में जो संसार के आदि ग्रन्थ है इस विज्ञान की सभी मोटी-मोटी बातें जैसे जल चिकित्सा उपवास चिकित्सा आदि पायी जाती है और आदि काल में लोग प्रकृति की गोद मे जन्म लेते, पलते और लम्बी आयु भोगने के बाद खुशी-खुशी महाप्रयाण भी कर जाते थे।

वेद काल के बाद पुराणकाल में भी प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति प्रचलित थी। राजा दिलीप दुग्ध कल्प एवं जंगल-सेवन और राजा दशरथ की रानियों ने फल-कल्प (एक ही प्रकार का फल) द्वारा संतान लाभ प्राप्त किया था। प्रारम्भ काल में किसी भी प्रकार की औषधि चिकित्सा नहीं थी। लंघन (उपवास) को लोग अचूक चिकित्सा माना करते थे और जब भी अस्वस्थ होते तो उपवास कर स्वस्थ हुआ करते थे। आदि काल से अपने देश में तो प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली अथवा प्राकृतिक जीवन शैली परम्परागत रूप से प्रचलित हो गई थी जैसे प्रातः जागरण, उषापान, सूर्यनमस्कार, सात्विक भोजन, सप्ताह में एक दिन उपवास, प्राणायाम, प्राकृतिक हरे-भरे स्थानों (तीर्थ स्थानों) का भ्रमण, ईश्वर स्मरण एवं आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का पूजन आदि जो कालान्तर में स्वास्थ्यप्रद होने से धर्म का अंग मान ली गई। हमारे देश मे आसनों द्वारा स्वास्थ्य-सुधार का भी प्रचलन आदि काल से चला आ रहा है। इनका प्रयोग आजकल अधिकतर रोगों को दूर करने के लिए ही किया जाता है। आसनों एवं स्वास्थ्य संबंधी जिन-जिन प्राकृतिक क्रियाओं का हम आजकल प्रयोग कर रहे हैं वे सभी प्राचीन भारत में विद्यमान थी, केवल आज उनके

www.thearyasamaj.org

नामों में अंतर हो गया है जैसे–इस जमाने के 'वाटर-सिपिंग' 'सिटजबाथ' 'एनिमा' तथा 'स्टीमबाथ' को पुराने जमाने में क्रम से 'आचमन' 'जलस्पर्श' बस्ति तथा स्वेद स्नान कहते थे। इसी प्रकार आजकल के 'सनाबाथ' को प्राचीन काल में 'सूर्य नमस्कार पद्धति' कहा जाता था। नेत्र रोगों के लिए आजकल का 'Sun gazing' प्राचीन काल में त्राटक के नाम से जाना जाता था। आजकल 'Air-cure' की जो पद्धति है वह पुरातन काल में 'प्राणायाम' के नाम से प्रसिद्ध थी।

उपवास चिकित्सा भी नयी नहीं है। स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना तथा प्राकृतिक जीवन को जानना ही स्वास्थ्य की उस दशा को प्राप्त करने का साधन है जिसके लिए मनुष्य लालायित रहता है। मनुष्य ने केवल उनके पालने की रीति में फेरबदल की है जो उसकी अनाधिकार चेष्टा है। प्राकृतिक चिकित्सा में जीवन-तत्व हीन विषैली औषधियों का शरीर के लिए अनावश्यक ही नहीं अपितु घातक भी समझा जाता है। इन औषधियों विशेषकर विषैली औषधियों को जब हम तन्दुरूस्ती की हालत में नहीं ग्रहण करते तो रोग की दशा में क्यों सेवन कराई जाती है?और किस आशा से?जो दवाइयाँ शरीर को तन्दुरुस्त अवस्था में हानि कर सकती है । वहीं बीमार पड़ने पर उसको लाभ करे वह कैसे मुमकिन हो सकता है?

डॉक्टरी दवाएँ जिनसे देश के करोड़ों लोग लाभ नहीं उठा सकते, हमारे लिए अभिशाप है। रोग के लक्षणों को दबाकर या दूर कर देने के बाद डॉक्टर का रोगी से नाता टूट जाता है। मगर प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से रोग मिट जाने के साथ ही रोगी के लिए एक ऐसी जीवन-पद्धति का आरम्भ होता है जिसमें रोग के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती। इस चिकित्सा प्रणाली का मार्ग इतना सहज और सुगम है कि एक बार इसका आश्रय लेने के बाद हर व्यक्ति इसका सच्चा अनुरागी और अनुगामी बन जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में यह माना जाता है कि जीवन का संचालन एक विचित्र, आश्चर्यजनक एवं सर्वशक्तिमान शक्ति द्वारा होता है जो प्रत्येक के जीवन के पास में रहकर उसके जन्म, मरण, स्वास्थ्य, रोग आदि सभी बातों की देखभाल करती है। उस महान शक्ति को प्राकृतिक चिकित्सक 'जीवन शक्ति' ईश्वरवादी 'ईश्वरीय शक्ति' एवं अनीश्वरवादी 'प्रकृति' कहते हैं। यही शक्ति जब हमारे शरीरों में रोग उत्पन्न करने की जरूरत समझती है तो रोग उत्पन्न करती है और फिर वही शक्ति उस रोग से मुक्ति देकर आरोग्य भी प्रदान करती है। वह शक्ति न केवल हमारे शारीरिक विकारों को अपितु मानसिक विकारों को भी दूर करने वाली होती हैं।

हम मंत्रमुग्ध होकर रह जाते हैं कि परमात्मा ने प्रकृति के द्वारा किस कौशल से और बुद्धिमानी से मानव शरीर की रचना की है। मस्तिष्क, नाड़ी संस्थान, हृदय, यकृत, उत्पादन संस्थान-चाहे जिस अंग को ले उसके निर्माण और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए व्यवस्था

करने में जो महान कौशल दिखाया गया है उसे देख समझ कर चकित रह जाना पड़ता है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि परमात्मा ने इस छोटे से शरीर के भीतर ही उसकी साज संभाल के लिए सारी आवश्यक वस्तुएं प्रस्तुत कर रखी है, जीवन शक्ति इन्हीं वस्तुओं के योग से रोग होने पर रोगों का शमन करती है और जन्म से लेकर मरण तक यही शक्ति शरीर के निर्माण और सुधार का काम करती रहती है। यह शक्ति उत्पत्ति स्थिति काल से प्रलय की तरफ तभी गमन करती है जब हम स्वयं या मिथ्योपचारक अज्ञानवश उसके रास्ते में रोड़े अटकाते हैं या उसके कार्यों में हस्तक्षेप करते हैं। जैसे हमारे शरीर में क्षारतत्व 80 प्रतिशत और अम्ल तत्व 20 प्रतिशत होता है। यही अनुपात कायम रखना ही स्वस्थ का आधार है। इसी पर हमारी शारीरिक, मानसिक अभ्यास, प्रकृति, रति क्षमता निर्भर करती हैं इसलिए हमारा भोजन 80 प्रतिशत क्षार प्रधान और 20 प्रतिशत अम्ल प्रधान होना चाहिए लेकिन हम 80 तो क्या आजकल तो 20% भी क्षारीय भोजन ग्रहण नहीं करते। हमारे शरीर में सभी रोगों की शुरुआत क्षार और अम्ल के असन्तुलन से होती है और इसके संतुलन से समाप्त हो जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा हमें इसी बात का ज्ञान कराती है कि प्रकृति 'स्वयं' चिकित्सक है, इसके उदाहरणस्वरूप जब पानी पीते वक्त पानी सांस की नली में चला जाता है तो खांसी पैदा करके कौन उसको ठीक करता है?जब तम्बाकू आदि कोई जहरीली चीज पेट में चली जाती है तो कै (उल्टी) के जरिए कौन उसे निकालता है?घाव हो जाने पर कौन उसे भरता है? हड्डी के टूट जाने पर उसे कौन जोड़ता है? प्रकृति ही तो। इसी तरह फोड़ा, फुन्सी से लेकर हैजा, दमा, गठिया आदि सभी रोग शरीर शुद्धि के लिए प्रकृति के प्रयास ही तो है। चिकित्सा की अन्य पद्धतियों में रोगी के रोग की चिकित्सा पर बल दिया जाता है। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में रोगी के समूचे शरीर की चिकित्सा करके उसे नया बनाया जाता है। जिससे रोग के चिन्ह अपने आप गायब हो जाते हैं।

थक कर सोने में जो सुख मिलता है, भूख में आहार जो आनन्द देता है तथा विपत्ति में ईश्वर और धैर्य का आश्रय लेने से जो शान्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार की सुख शान्ति मनुष्य को रोग से मुक्त हो जाने के बाद मिलती है और मिलनी चाहिए। यदि रोग को दबा नहीं दिया गया तो रोग के चले जाने के बाद रोगी को इस तरह की अनुभूति होनी चाहिए कि उसका शरीर हल्का हो गया है–नया हो गया है, और एक बोझा सिर से उतर गया है। यदि यह अनुभूति नहीं होती तो समझना चाहिए कि प्रकृति, रोग द्वारा शरीर का जो कल्याण करना चाहती थी उसमें विघ्न पड़ गया है। अन्यथा प्रकृति पथ वह पथ है जिस पर चल कर कोई भी प्राणी जीवन की परिपूर्णता को, जीवन के सच्चे आनन्द को तथा जीवन के ध्येय को प्राप्त कर सकता है और क्यों नहीं? दयामय परमेश्वर और उनकी कल्याणमय प्रकृति अपनी छत्र-छाया में प्राणीमात्र को जो उन पर विश्वास करता है, आश्रय प्रदान करने के लिए सदैव

प्रस्तुत रहते हैं। यहाँ तो जो शरण में आया उसे अभय दान मिला।

रोग, पाप, संताप, भय, अभाव, जीवन नहीं है। इनसे लिपटे रहना जीवन नहीं है। वह तो आँशिक मृत्यु है। जीवन तो रोग, पाप, संताप, भय, अभाव आदि से मुक्त रहना अथवा इनसे मुक्ति पाना है जो केवल प्राकृतिक नियमों पर चलने से ही प्राप्त हो सकता। 'कारलायन' का कहना है कि एक स्वस्थ मनुष्य अपने स्वास्थ्य के विषय में जानकारी नहीं रख सकता। क्योंकि स्वास्थ्य ही जीवन है। स्वास्थ्य और जीवन किसी समय में पर्यायवाची शब्द थे–एक ही चीज के दो नाम। एक ग्रीक कवि स्वास्थ्य के बगैर जीवन का अस्तित्व ही नहीं मानता और एक रोमन कवि के विचार से सिर्फ रहने का नाम जीवन नहीं, अपितु आनन्दपूर्वक एवं स्वस्थ रहने का नाम जीवन है।

प्राकृतिक जीवन, प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञान का विस्तृत रूप होता है, जबकि प्राकृतिक चिकित्सा संकुचित। प्राकृतिक जीवन के अन्तर्गत प्राकृतिक चिकित्सा आ जाती है। प्राकृतिक जीवन के अन्तर्गत प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने से रोग होते ही नहीं। दोनों में यही अन्तर है। प्राकृतिक जीवन प्रकृति का वरदान है, तो विविध रोग प्रकृति के दंड-विधान एवं प्राकृतिक चिकित्सा तत्संबंधी प्रायश्चित का एक ढंग, एक कठिन तपस्या है। प्राकृतिक जीवन सरल, सुन्दर मानव स्वभाव है और उसका फल नैसर्गिक स्वास्थ्य मानव का जन्मसिद्ध अधिकार। प्राकृतिक जीवन पद्धति हमें प्रकृति की ओर ले जाती है, प्रकृति से सदा के लिए संबंध जोड़ना सिखाती है, जिससे हम उससे कभी पृथक ना हो सकें। प्रकृति से पृथक् रहना ही रोग, शोक तथा निरानंद का कारण होता है। प्राकृतिक जीवन पद्धति हमें ईश्वर की ओर भी ले जाती है। ईश्वर से सदा के लिए संबंध जोड़ना सिखाती है, जिससे हम उससे कभी पृथक् न हो सकें। ईश्वरीय आज्ञा से विमुख रहना ही रोग, शोक तथा निरानंद का कारण होता है। इस तरह प्राकृतिक जीवन शैली और ईश्वरीय आज्ञा में मूलत: कोई भेद नहीं होता। दोनों के गुण समान होते हैं। प्रकृति और ईश्वर के प्रति अटल और अटूट अनुराग ही मुख्य प्राणी धर्म या जीवन-यापन का अटूट नियम है। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली या प्राकृतिक जीवन शैली कोई विशिष्ट उपचार पद्धति न होकर, वह धर्म प्रणाली है जिस पर चलने से सच्चे स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है जो स्थायी होता है। इसका आचरण ही रोगों से बचने और रोग होने पर उससे स्वयं मुक्त होने का सहज, सरल उपाय है। इसके सिद्धान्त अटल, अचूक और अपरिवर्तनशील हैं। कारण, प्राकृतिक चिकित्सा में आज जिन छः तत्वों को गुणकारी व उपकारी समझकर काम में लाया जाता है। वह कल भी थे, आज भी है और सदैव ही उपयोग में लाये जाते रहेंगे। क्यों उपयोग में लाये जाते रहेंगे?क्योंकि मानव शरीर का निर्माण प्रकृति के जिन पांचों तत्वों (धूप, मिट्टी, पानी, हवा और आकाश) से हुआ है वे पाँचों तत्व एवं उनका रचयिता परमपिता परमात्मा सर्वव्यापक होने से

सर्वत्र प्राप्य हैं इसमें चिकित्सा रोग की नहीं की जाती, बल्कि रोगी की ही जाती है। रोग कौन सा है इसकी तरफ ज्यादा ध्यान देने की जरूरत नहीं समझी जाती, सभी रोग एक है और सभी रोगों का उपचार भी एक वह उपचार है शरीर में संचित (एकत्रित) मल या जहर का शरीर के चारों निष्कासन मार्गों से (श्वांस, पसीना, मूत्र व मल के रूप में) बाहर निकाल देना यही चिकित्सा है। शर्त सिर्फ इतनी ही है कि पाँच तत्वों से निर्मित शरीर की टूट-फूट को उन्हीं पाँच तत्वों से ठीक किया जाए। ठीक उसी प्रकार जैसे कि जब हमारे पास डीजल से चलने वाली कार है तो उसका डीजल खत्म हो जाने पर उसमें डीजल ही डाला जाएगा न कि पेट्रोल या कैरोसीन या अन्य कोई तेल। यदि डीजल की जगह उसमें पेट्रोल डाला जाएगा तो कार शायद थोड़ी दूर तक तो चलेगी लेकिन उसके बाद उसके इंजन या अन्य पाट्स में खराबी आ जाएगी और उस खराबी को ठीक करने के लिए उसे वर्कशाप में ले जाना पड़े। इससे एक तो समय नष्ट हो दूसरा धन की हानि, तनाव अलग होगा और यदि किसी कारणवश उस कार का कोई असली पुर्जा निकालकर उसकी जगह नकली पुर्जा लगाया जाएगा तो शायद कार कभी भी सुचारू रूप से नहीं चल पाएगी। ठीक यही बात हमारे शरीर के संबंध में कही जा सकती है। प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तानुसार यदि हमारे शरीर में रोग कारक विजातीय द्रव्य एकत्रित नहीं है तो कोई भी मौसम का बदलाव या कीटाणु का प्रकोप हमें रोगग्रस्त नहीं कर सकते। कीटाणु रोग का कारण नहीं बल्कि वह तो रोग पदार्थ को बाहर फेंकने वाला एजेन्ट है। शरीर के विभिन्न ओरगेन्स (हृदय, लीवर, गुर्दा इत्यादि) को रोग कारे विजातीय द्रव्य से मुक्त कर उनकी क्रियाशीलता बढ़ाकर सारे झंझटों से बचने का प्रयास करें।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने घोषणा की है कि सबको स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएंगी। हम और सारी दुनिया के स्वास्थ्य अधिकारियों और सम्पूर्ण मानव समाज को समझाना चाहते हैं, शरीर से कचरा साफ करो। एक-एक कीटाणु को मारते-मारते पूरा चिकित्सा विज्ञान थका जा रहा है लाइलाज बीमारियों की एक लम्बी सूची बनती जा रही है। ऐसी विकट परिस्थिति में प्राकृतिक चिकित्सा एक सरलतम मार्ग समाज को सुझा रही है शरीर को भीतर से स्वच्छ करो और स्वस्थ रहो। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोग मुक्ति तो एक बहुत साधारण सी चीज है जिसकी विधि पशु-पक्षी तक जानते हैं और उनके पास पुस्तकें एवं शिक्षक न रहने पर भी वे उस ज्ञान ठीक-ठीक एवं सफलतापूर्वक उपयोग करते हैं। आज तक कोई कुत्ता, बिल्ली, शेर, गाय, भैंस, बकरी आदि अस्पताल में डॉक्टर के पास नहीं गये और डॉक्टर से नहीं कहा कि डॉक्टर साहब मुझे हृदय रोग है, मेरा कोलस्ट्रोल बढ़ गया है, मुझे ब्लड प्रेशर हो गया है अथवा कोई अन्य रोग हो गया है। कौन जा रहा है इन अस्पतालों में डॉक्टरों के पास?ये मानव। यह सब क्यों हो रहा है?क्योंकि मानव अपने आहार को भी भूल गया है नहीं पहचान पा रहा है कि उसे क्या खाना चाहिए?क्या नहीं

www.thearyasamaj.org

खाना चाहिए? जबकि 15-20 वर्ष पढ़कर बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ भी प्राप्त कर चुका होता है परन्तु अपनी जीभ के चटोरेपन की लोलुपता के आधीन होकर भीतर ऊटपटांग भोजन (जंक फूड, चाय, कॉफी इत्यादि) प्रविष्ट कराता है शादी विवाह के अवसर पर 51 रु. का शगुन डालता है 500 रु. की खुराक खाके आता है और वो भी बेमेल, बीमार तो होगा ही। दूसरी तरफ इन जीव-जन्तुओं को देखो इनकी कहीं कक्षाएं नहीं लगती, इनका कोई प्रशिक्षण संस्थान भी नहीं है। ये कभी कोलगेट नही करते, नहाते भी कम हैं, साबुन का इस्तेमाल नहीं करते, क्रीम, पाऊडर, लोशन आदि नहीं लगाते और ना ही कभी बालों में किसी प्रकार के शैम्पू व डाई का प्रयोग करते हैं फिर भी इनके दाँत कितने सुन्दर, बाल कितने काले रेशमी, चमकते हुए व मुलायम होते हैं ये बेचारे तो बीमार भी मनुष्य के साहचर्य में रहकर होते हैं क्योंकि मानव स्वयं तो अपने स्वाभाविक आहार को पहचानता नहीं है, उन्हें उनके अनुकूल स्वभाविक भोजन से परे कर देता है। आज हमारे देश में गुरुओं, सन्तों, महात्माओं की बाढ़ सी आ गई है और ये सब लगे हैं समझाने में केवल और केवल इस मनुष्य को। फिर भी ये सुधर नहीं पा रहा है। परिणामस्वरूप आज विभिन्न रोगों से ग्रसित होता जा रहा है। प्रत्येक मनुष्य आज चिन्ताओं और तनावों से घिरा हुआ है शारीरिक और मानसिक भोग विलास के प्रसाधनों में इतनी विपुलता हो गयी है कि सामान्य मानव मानसिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्य से दिनों दिन विमुख और वंचित होता जा रहा है। घृणा, भय और ईर्ष्या से जो सभी प्रकार के रोगों के जनक हैं इनसे बचने के लिए हम सबको प्रकृति की शरण लेनी चाहिए प्रकृति के बने नियमों का पालन करने से प्रत्येक प्राणी स्वस्थ और दीर्घायु रह सकता है क्योंकि सुन्दर, स्वस्थ और सामर्थ्य युक्त शरीर की रचना शरीर के भीतर बैठा मिस्त्री रूपी अन्तर्यामी परमात्मा (हमारे द्वारा भेजे गये कच्चे माल से) करता हैं इसीलिये प्राकृतिक जीवन जीने की कला हमें सीखनी चाहिए। पुराने लोगों की भाँति व्यायाम, विश्राम एवं भोजन तीनों के स्वाभाविक संतुलन को समझना चाहिए इन पशु-पक्षियों, जीव-जन्तुओं से प्रेरणा लेनी चाहिए सच तो ये है कि ऐसा सिर्फ कहने से कम नहीं चलेगा हमें पुनः प्रकृति की ओर लौटना होगा क्योंकि इसके माध्यम से हमें निराशा और आशा के क्षणों में अपने मन को स्थिर रखने का ज्ञान होता है ताकि हम ईश्वर की कृपा के पूर्णतया भागी बन सके जो जीवन को सुखमय बनाने की एकमात्र उपाय है।

प्राकृतिक जीवन, जीवन विज्ञान है, स्वास्थ्य, रोग एवं जीवन के संबंध में उसका अपना दर्शन या फिलासफी है, जिनमें खोए स्वास्थ्य की पुनः प्राप्ति कर उसे बनाए रखने तथा जहरीली दवाओं का इस्तेमाल किये बिना ही व्याधियों को दूर करने के लिए प्राकृतिक नियमों का अनुसरण किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा हमें ऐसे नियमों का ज्ञान कराती है जिसे कोई अन्य चिकित्सा प्रणाली नहीं करा पाती। जिनकी नियमपूर्वक पालना करते रहने से

किसी को बीमार पड़ने की नौबत ही नहीं आ सकती।

डॉ. जोसिया ओल्डफील्ड ने एक जगह लिखा है कि यह अधिक अच्छा है कि लोगों को यह बताया जाए कि रोगों से कैसे बचा जा सकता है अपेक्षा इसके कि रोग होने दिया जाए और तब उसकी दवा की जाये। यह अधिक आवश्यक है कि रोगियों को यह बताया जाए कि वे रोगी हुए तो क्यों हुए बजाए इसके कि उन्हें विषैली दवा पिलाई जाए। यह अधिक उचित है कि गाढ़ी कमाई का पैसा स्वास्थ्यवर्धक ताजी हवा, सूर्य प्रकाश, साग-सब्जी, फलों के बगीचे, भोजन संबंधी उचित शिक्षा तथा प्राकृतिक जीवनयापन की शिक्षा आदि पर खर्च किया जाए, बजाए इसके कि उसे व्यर्थ में महंगी दवाइयों, डॉक्टरों के बिलों तथा इन्जेक्शनों आदि में फूंका जाए जब तक यह सृष्टि रहेगी तब तक यह सत्य भी कायम रहेगा कि मनुष्य जितना ही प्रकृति और परमेश्वर के निकट रहने का यत्न करेगा वह उतना ही स्वस्थ एवं शान्ति का भागी होगा। क्योंकि परमेश्वर के समीप और प्रकृति की गोद में रहने से मनुष्य के पास रोग, शोक, दु:ख या अशान्ति फटक ही नहीं सकती।

प्राकृतिक चिकित्सा संपूर्ण रूप से स्वास्थ्य प्रदान करने वाली चिकित्सा है अर्थात् यह रोगों की जड़ से उखाड़ कर सदा के लिए चले जाने पर विवश कर देती है। कहने का तात्पर्य है कि जहाँ दवाइयों द्वारा रोग को दबा दिया जाता है वहाँ प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा दबे हुए रोगों को पूर्ण रूप से उभार कर उनका इलाज किया जाता है। इस कारण रोगी यह समझ बैठता है कि मेरी बीमारी यहाँ (प्राकृतिक उपचार कराने से) और बढ़ गई है और वह घबरा कर अपना इलाज (उपचार) अधूरा ही छोड़ देता है जो कि पूर्ण रूप से गलत है। इसलिए प्राकृतिक उपचार लेने वाले प्रत्येक रोगी को प्राकृतिक चिकित्सा को रोग उपशम संकट अर्थात् Curative crisis या Healthing crisis उत्पन्न कर रोग को पूर्णतया शमन करने वाले इस स्वर्णिम सिद्धान्त को अवश्य समझना चाहिए। जिस प्रकार जाड़ा बीत जाने के बाद पतझड़ की ऋतु आती है और पेड़ों की सारी पत्तियाँ उस समय गिर पड़ती है पेड़ पूर्णतया पत्रविहीन हो जाते हैं देखने में भी सुन्दर नहीं लगते तो क्या प्रकृति ऐसा करके उन पेड़ों के लिए 'क्योरेटिव क्राइसिस' पैदा नहीं करती? करती है क्योंकि कुछ ही दिनों बाद बसंत ऋतु का आगमन होते ही वे पेड़ पहले से भी अधिक हरे-भरे और पल्लवित दिखने लगते हैं।

मल-मूत्र इत्यादि विसर्जन से पूर्व जो थोड़ी सी तकलीफ के साथ हाजत सी महसूस होती है वह प्रकृति की 'उभाड़' क्रिया ही तो है क्योंकि हाजत के बाद मल-मूत्र आदि के त्याग से आराम मिलता है तबियत हल्की हो जाती हैं

ठीक इसी प्रकार ज्वर, हैजा, दस्त, चेचक आदि रोगों में शरीर में उपस्थित विजातीय द्रव्य को शरीर की जीवनी शक्ति द्वारा शरीर से अतिवेग से निकाल बाहर कर देना ही प्राकृतिक उपचार में क्योरेटिव क्राईसिस अर्थात् उभाड़ पैदा करके रोगमुक्त कर

देना कहलाता है। यही प्रकृति की नियम है। गंदा तथा बदबूदार थूक, मुँह से दुर्गन्ध, सर्दी, जुकाम, खांसी, चिड़चिड़ापन, सिरदर्द, चर्मरोग, स्नायुशूल, जी मिचलाना, उल्टी होना, चक्कर आना, आँखों के सामने अंधेरा, सिर खाली सा मूर्छा, एसीडिटी, हृदय की धड़कन, पेचिश, अनिद्रा, बुखार, शरीर ठंडा पड़ना, पेशाब रूकना, जलन आदि तकलीफें उभाड़ के रूप में उपचार के दौरान रोगी को हो सकती है इनसे घबराना नहीं चाहिये, दो चार दिन में उभाड़ ठीक हो जाते हैं। लेकिन परेशान करने वाले 'उभाड़' उन्हीं रोगियों की चिकित्सा में अक्सर होते गए हैं जो चिकित्सा से पूर्व बहुत सी विषाक्त दवाईयाँ ले चुके होते हैं और जो प्राकृतिक जीवन यापन करते हैं और दवाइयों से बचे रहते हैं उनके बीमार पड़ने पर प्राकृतिक उपचार काल में या तो उभाड़ होता ही नहीं या बहुत हल्के होते हैं और वे पूर्ण स्वस्थ हो जाते हैं।

वास्तव में सम्पूर्ण स्वस्थ वही रोगी होता है जो अपने पिछली भूलों को स्वीकार कर तुरन्त प्रकृति की ओर दृढ़ विश्वास और संयम के साथ चल पड़ता है उसके सम्पूर्ण स्वस्थ होने में कोई शंका नहीं है।

यह बात स्वाभाविक है कि कष्ट से पीड़ित रोगी का रोग से जल्दी छुटकारा न मिलने के कारण धैर्य छूट जाता है किन्तु उसकी उस अधीरता का कारण उसका रोग ही होता है। ऐसे में रोगी को धैर्य रखते हुए अपना चिकित्सा क्रम जारी रखकर स्वस्थ प्राप्ति करनी चाहिए। क्योंकि प्रकृति का समस्त कार्य धीरे-धीरे होता है न कि तेजी से। जो शक्ति धीरे-धीरे संचित होती है, वह संयुक्त होकर पहाड़ तक को विदीर्ण कर सकती है पर क्या कोई शक्ति पलक मारते बीज को वृक्ष में परिणित (बदल) कर सकती है?"जल्दी का काम शैतान का" प्रसिद्ध है पेड़ काटना मिनटों का काम है, पर पेड़ लगाना वर्षों का। प्रकृति की नियमावली में भी संहार जल्दी संभव है, पर विकास जल्दी असम्भव हैं जैसे किसी भी चीज को तोड़ने में सैकेन्ड लगते हैं पर बनाने में वर्षों लग जाते हैं। लेकिन स्वतः ही किसी चीज के विकास और विनाश में समय लगता है। इसी प्रकार शरीर में रोग का विकास भी धीरे-धीरे होता है। उदाहरणस्वरूप एक व्यक्ति दवा खाते-खाते और सूईयां लेते-लेते अपनी जीवनी शक्ति खो बैठा, फिर भी उसका रोग नहीं गया, बल्कि और असाध्य हो गया उसकी नाड़ियों की शक्ति क्षीण हो गई। रक्त में विष भर गया सारा बदन सूज गया। मूल मार्गों के स्वाभाविक कार्य में शिथिलता आने लगी पाचन खराब हो गया दस्त आने लगे तथा भेजे में भी कुछ खराबी आ गई। ऐसे रोगी को प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली ही क्यों, कोई भी चिकित्सा प्रणाली पलक मारते ठीक करने का वादा नहीं कर सकती। ऐसा रोगी कई वर्षों में भी यदि अच्छा हो जाए तो भगवान की असीम कृपा समझनी चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सा में अक्सर रोगी अल्पकाल में सामान्य रूप से स्वस्थ हो जाते हैं और चिकित्सा छोड़ बैठते हैं वे

www.thearyasamaj.org

समझते हैं कि वे पूर्णतया स्वस्थ हो चुके हैं लेकिन ऐसा नहीं होता रोग के चिन्ह मिट जाने से यह समझ बैठना बड़ी भूल है कि रोग अच्छा हो गया। क्योंकि रोग के चिन्ह प्रकट होने से बहुत पहले ही रोग शरीर में घर कर चुका होता है। अत: रोग का बीज नष्ट होने में समय लगता है और रोगी नवजीवन और दीर्घायु प्राप्त करता है।

अंत में यही कहना चाहूँगा कि प्राकृतिक जीवन, प्राकृतिक रहन-सहन तथा प्राकृतिक खान-पान हमारे जीवन में सात्विकता लाकर हमें ऊपर उठाते हैं। मन को संयमित कर हमें अध्यात्म की ओर ले जाते हैं यह सत्य है कि मानव जाति यदि प्राकृतिक चिकित्सा दर्शन का अनुकरण करे उसे अपनाये तो निर्दयता, पाशविकता, पैशाचिकता संसार से समाप्त हो जायें और पृथ्वी पर स्वर्ग उतार आवे। रोगी शरीर, निर्बल आत्मा और कलुषित मन तीनों की चिकित्सा के लिए ईश प्रार्थना व हवन, यज्ञादि जो प्राकृतिक चिकित्सा के प्रमुख अंग है, रामबाण चिकित्सा है। इसके सीधे सादे स्वभाविक प्रयोगों से किसी प्रकार के दु:ख के बदले आनन्द ही प्राप्त होता है और वह आनन्द बच्चे, बूढ़े, जवान सबके लिए समान होता है, मानव प्राकृतिक चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करके, इसको व्यवहार में लायें तो सुख शान्ति और आनन्द को प्राप्त कर अपना जीवन सरलता से जी सकता है।

♦♦♦

आर्य वीर दल शिविर सम्पन्न

वीरगंज, नेपाल में 8 से 14 अक्टूबर 2016 तक आर्य वीर दल प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया गया जिसमें लगभग 150 युवा नेपाल के विभिन्न जिलों से भाग लेकर आसन, व्यायाम, प्राणायाम, जुडो-कराटे आदि का प्रशिक्षण लिया। मुख्य प्रशिक्षक के रूप में श्री हरि सिंह जी आर्य अपने सहयोगी प्रशिक्षकों के साथ शिविरार्थियों को बैदिक शिक्षा दिया।

आर्य वीर दल बिहार के मुख्य अधिष्ठाता श्री कामता प्र॰ आर्य जी ने शिविर का संचालन करते हुए बच्चों को अनुशासन एवं सभ्यता का पाठ पढ़ाया साथ ही सम्पूर्ण शिविर की व्यवस्था की।

इस शिविर के मुख्य आयोजकों में श्री विरेन्द्र आर्य श्री रामबाबु आर्य, शिवशंकर आर्य, श्याम किशोर आर्य, नथुनि प्र॰ आर्य, श्री विनोद आर्य, महोपदेश रामचन्द्र सिंह क्रांतिकारी जी का सहयोग काफी सराहनीय रहा है।

इस शिविर में बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता, रक्सौल आर्य समाज के मंत्री श्री रमाशंकर आर्य एवं सभा सदस्य श्री प्रेम कुमार आर्य आदि ने भी समापन समारोह में भाग लेकर आर्यो का मार्गदर्शन किया।

♦♦♦

आर्य समाज टाण्डा में आर्यों का संगम

आर्य समाज टाण्डा, अकबरपुर उत्तर प्रदेश का शताब्देत्तर रजत जयंती समारोह 10 से 14 नवम्बर 2016 तक धूम-धाम से सम्पन्न हो गया।

इस अवसर पर अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया था। झण्डोतोलन से लेकर समापन तक का दृश्य देखते ही बनता था। राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानों, भजनोपदेशकों कवियों ने कार्यक्रम को अविस्मरणीय बना दिया। शोभा यात्रा से सम्पूर्ण नगर शोभायमान हो गया। एक ओर जहाँ आचार्य प्रियंवदा वेद भारती, नजीमा वाद ने सामवेदीय पारायण यज्ञ को मूर्त रूप प्रदान किया। वहीं वैदिक विद्वानों आचार्य वेद प्रकाश क्षौत्रिय डॉ० ज्वलंत कुमार शास्त्री, डॉ० सोमदेव शास्त्री, डॉ दीनानाथ शास्त्री, अग्निव्रत नैष्ठिक, महावीर मिमांसक, डॉ० प्रशस्य मिश्र शास्त्री आदि के द्वारा प्रवाहित ज्ञान-गंगा में हजारों नर-नारियों ने स्नान किया।

भजनोपदेशक भाई कुलदीप आर्य, कैलाश कर्मठ, सत्यपाल पथिक हमेशा छाये रहे। आचार्य योगेश शास्त्री का संचालन भी सराहनीय रहा।

कवि सम्मेलन में कवियों ने कोई कसर नहीं छोड़ी, डॉ० प्रशस्य मित्र शास्त्री की अध्यक्षता एवं संजय सत्यार्थी के संचालन में आयोजित कवि सम्मेलन में जहाँ आर० डी० गुप्ता ने श्रोताओं को लोट-पोट कर दिया वहीं मुख्य वक्ता डॉ० सारस्वत मोहन मनीषी ने सुप्त रक्त में चेतना का संचार कर राष्ट्रवाद का मार्ग प्रशस्त किया। सत्यदेव शास्त्री एवं विधान चन्द्र जी आदि अनेक कवियों ने भी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की।

श्री अशोक आर्यजी, उदयपुर ने सत्यार्थ प्रकाश की सुरक्षा पर एक सफल मार्ग दर्शन दिया।

सम्पूर्ण कार्यक्रम में स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती एवं स्वामी आर्य वेश जी का मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद मिलता रहा।

बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री भाई वीरेन्द्र, सभा मंत्री श्री रमेन्द्र कुमार गुप्ता, उपप्रधान ज्ञानेश्वर शर्मा, उप मंत्री संजय सत्यार्थी, अरूप कुमार, रामनारायण शास्त्री, गुणानन्द शास्त्री, देवेन्द्र महतो आर्य, बच्चुलाल आर्य, आदि ने सैकड़ों आर्यों के साथ टाण्डा पहुँचकर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई।

इस कार्यक्रम में श्री सुरेश अग्रवाल, श्री विनय आर्य, आचार्य हनुमत प्र०, आचार्य अंशु देवश्रीदीन दयाल गुप्त, श्री ठाकुर विक्रम सिंह, साध्वी उत्तमायति, सत्यव्रत सामवेदी, आचार्य सुखदेव तपस्वी के अलावे अनेक प्रबुद्ध आर्यों ने भाग लेकर अपनी उपस्थिति दर्ज करायी।

सम्पूर्ण कार्यक्रम पर आयोजक श्री आनन्द कुमार आर्य जी की पैनी निगाह थी। किसी भी अतिथि को कोई कमी न हो इसकी पूरी व्यवस्था की गई थी। जिस प्रकार के समायोजन श्री आनन्द बाबु ने किया इससे आर्य जगत में उनका नेतृत्व स्पष्ट झलकता है। इस सफल आयोजन के लिये श्री आनन्द बाबु का बहुत-बहुत बधाई, धन्यवाद।

♦♦♦

आर्यसमाज ब्यापुर (पटना) का वेदप्रचार सप्ताह सह मानव चरित्र निर्माण शिविर सम्पन्न हुआ।

आर्य समाज ब्यापुर में 18 से 25 अगस्त तक वेद प्रचार सप्ताह बड़े ही उल्लास के साथ घर-घर जाकर हवन यज्ञ, प्रवचन वेद के माध्यम से मनाया गया। आचार्य सह नसर पाल हरियाणा एवं भजनउपदेशक पं० सत्यप्रकाश आर्य (पटना) मुख्य विद्वान् के मौजूदगी में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

प्रतिदिन 18 अगस्त को ब्यापुर आर्यसमाज के प्रधान सह विहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा के उपमंत्री अरूण आर्य के यहाँ यज्ञ, प्रवचन, वेदकथा का आयोजन हुआ। 20 अगस्त को प्रदीप गुप्ता जी के घर पर। 21 अगस्त को मंत्री सतीश हरी के घर पर। 22 अगस्त रौशन आर्य पुस्तकाध्यक्ष के घर पर। 23 अगस्त को R.P.S दयानन्द स्कूल ब्यापुर के प्रचार्य रोहित, गुप्ता जी के स्कूल में। 24 अगस्त को जीवनन्दन जी के घर पर। एवं अन्तिम दिन आर्य समाज मंदिर में हवन, यज्ञ, प्रवचन, वेद कथा, भजनोपदेश प्रातः 8 बजे से 11 बजे तक सम्पन्न हुआ। आर्य समाज ब्यापुर के सदस्यों के अलावा ग्रामीण महिलाएँ, पुरुषों एवं सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद् ब्यापुर के सदस्यों एवं अधिकारियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लेकर कार्यक्रम को सफल बनाया। साथ ही साथ मानव चरित्र-निर्माण शिविर में ब्यापुर एवं आस-पास के गाँवों से 125 युवाओं का सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद् ब्यापुर एवं आर्यसमाज ब्यापुर के संयुक्त तत्वाधान में 18 अगस्त से 25 अगस्त 2016 तक प्रातः 4:30 से 6:30 बजे तक रामगोविन्द प्रसाद साह हाई स्कूल व्यापुर के मैदान में राष्ट्रीय व्यामाचार्य आचार्य सहनसर पाल एवं योग शिक्षक गुलाब सिंह के सानिध्य में एवं ब्यापुर आर्यसमाज के युवा प्रधान अरूण आर्य एवं युवा मंत्री सतीश हरि के नेतृत्व में 18 से 25 अगस्त तक, कराटे, दण्ड बैठक, पी० टी०, लाठी, योग के साथ-साथ युवाओं में चरित्र निर्माण कैसे हों, आचरण खान-पान शुद्ध हों, नशामुक्ति, शराब बन्दी, भ्रूण-हत्या, नारी उत्पीड़न, पाखण्ड आडम्बर आदि जो हमारे समाज को दीमक की तरह चाट रहा है, इन सभी के खिलाफ आवाज बुलन्द कराने की और माँ, बहनों की, बेटियों की सम्मान कैसे बचाया जाये इन सभी बातों पर मानव चरित्र निर्माण शिविर में युवाओं को प्रशिक्षित किया गया।

24 अगस्त के संध्या 4 बजे तक पूरे पंचायत में पटना जिला के प्रधान सह बिहार राज्य आर्यप्रतिनिधि सभा के उपप्रधान रामानन्द जी के नेतृत्व में शोभा यात्रा धूम-धाम से पूरे पंचायत में निकाली गयी। शोभा यात्रा में सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद् ब्यापुर के सदस्यों ने शराबबंदी को सफल बनाने के लिए, नशामुक्ति, भ्रूण हत्या, के खिलाफ नारा बुलंद करते हुए पंचायत के युवाओं को जागरूक किया। 'क्या खाने में होय भलाई, साग-सब्जी दूध मलाई।' दूध पीओं शराब छोड़ो, भ्रूण हत्या बंद करो, तन मन धन को करे खराब-मांस अंडा और शराब, इत्यादि नारों द्वारा

जागरूक किया गया। साथ ही साथ जगह-जगह पर युवाओं ने कराटे, दंडबैठक लाठी का प्रदर्शन कर समापन समारोह के दिन आर्यसमाज के प्रांगन में सभी ग्रामवासी को आने का निमंत्रण दिया गया कि युवाओं ने एक सप्ताह में जो कला सीखा है, उसका प्रदर्शन आप सभी ग्रामवासी के सामने करेंगे।

अंतिम दिन मानव चरित्र-निर्माण शिविर के समापन सामरोह के दिन मुख्य अतिथि बिहार राज्य आर्यप्रतिनिधि सभा के माननीय मंत्री श्री रमेन्द्र कु० गुप्ता जी को आर्य समाज के प्रधान अरूण आर्य मंत्री सतीश हरि, एवं सभी पदाधिकारियों ने फूल मालाओं एवं पट्टा देकर सम्मानित किया।

सभी की अध्यक्षता पूर्वमंत्री रामबाबु त्यागी ने किया। मंत्री रमेन्द्र गुप्ता जी ने कहा आज आर्य समाज के युवाओं की भागीदारी नगण्य है, जबतक युवा आर्य समाज से नहीं जुड़ेंगे देश की दशा और दिशा नहीं बदलेगी। ऐसी ही शिविर पूरे बिहार में लगाया जायेगा। जो प्रयास पटना में आर्य समाज ब्यापुर कर रहा है वह बहुत ही सराहणीय कार्य है, मैं यहाँ के मंत्री प्रधान को धन्यवाद देता हूँ कि आगे ऐसा ही शिविर लगाते रहे और युवा निर्माणका कार्य करते रहे। कार्यक्रम के बीच-बीच में युवा थाली को चीरना, छड़ को मोड़ना, स्तूप बनाना, लाठी का प्रदर्शन, कराटे इत्यादि कला का प्रदर्शन कर रहे थे। अंत में शान्ति के बाद सभी कार्यवाही समाप्त की गयी।

'अरूण आर्य'

प्रधान आर्य समाज ब्यापुर

शोक समाचार

डॉ० धर्मवीर जी का असामयिक निधन

महर्षि दयानन्द की उतराधिकारिणी सभा, परोपकारिणी सभा, अजमेर के प्रधान, प्रकाण्ड विद्वान डॉ० धर्मवीर जी का दिनांक 6 अक्टूबर प्रातः 5 बजे अचानक निधन हो गया। इस असहनीय समाचार को सुनकर समस्त आर्य जगत मर्माहत हो गया। अन्तयेष्टि 7 अक्टूबर को मलसर स्थित शवदाह गृह में सम्पन्न हुई, जिसमें हजारों आर्य जनों ने भाग लेकर अश्रुपूर्ण विदाई दी।

पं० सियाराम निर्भय जी का निधन

आर्य जगत के क्रांतिकारी कवि उदभट् आर्योपदेशक पं० सियाराम निर्भय जी का आकस्मिक निधन धनतेरस को अपने निवास स्थान आरा में हो गया। उनका अंतिम संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से आर्यसमाज आरा के प्रधान श्री कामता प्रसाद आर्य जी के पौरोहित में सम्पन्न हो गया।

निर्भय जी के निधन से आर्यजगत को अपूर्णीय छती हुई है। बिहार मे वे एक मात्र कवि उपदेशक थे। उनके वाणी में जादू था। जिस मंच पर होते थे श्रोता खिंचा चला जाता था।

♦♦♦

श्री कामता प्रसाद आर्य के नेतृत्व में आर्य वीर दल का वीरगंज नेपाल में शोभा यात्रा

आर्य समाज कानपुर में संजय सत्यार्थी प्रवचन करते हुए।

आर्य समाज नेमदारगंज, के कर्मठ आर्यवीर श्री हर्षवर्धन आर्य (पुलक जी) दाम्पत्य सूत्र में बंधे ।

www.thearyasamaj.org

प्रेषक :
सभा-मंत्री
बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा
श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला
पटना-८०० ००४

सेवा में,
श्री/मेसर्स............................
मो०............................
पो०............................
जिला............................
(प्रेषिती के न मिलने पर यह अंक प्रेषक को ही लौटा दें।)

मुद्रित सामग्री

आर्य समाज टाण्डा के उत्सव पर सभा प्रधान श्री भाई वीरेन्द्र का सम्मान करते हुए श्री आनन्द कुमार जी।

कवि सम्मेलन का दृश्य

स्वत्वाधिकारी, बिहार राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, श्री मुनीश्वरानन्द भवन, नयाटोला, पटना-4 के लिए रमेन्द्र कुमार गुप्ता (मंत्री) द्वारा जय उमा प्रिन्टर्स, पटना द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।